अग्निशिखा एवम् पुरोधा

जनवरी २०२५

जीवन की ऋतुएँ

अग्निशिखा एवम् पुरोधा जनवरी २०२५   वर्ष २, अंक ६, पूर्णांक १८

विषय-सूची

जीवन की ऋतुएँ

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)

सन्देश/सम्पादकीय	३
चार आश्रम	५
बचपन	७
विद्यार्थी	२३
यौवन	३१
बुढ़ापा	४०

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४३
आया है ऋतुराज बसन्त (कविता)	'वीणा' से साभार	४४
कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है संकल्प!	वन्दना	४५

जन्म से मरण तक, जीवन एक ख़तरनाक चीज़ है।

साहसी इसमें से ख़तरों की परवाह किये बिना गुज़र जाते हैं।

सावधान सतर्कता से काम करता है।

भीरु सभी चीज़ों से डरते हैं।

लेकिन अन्त में, हर एक के साथ होता वही है जो 'परम संकल्प' ने निश्चित किया हो।

श्रीमाँ

पाठकों को हम यह याद दिला दें कि वैसे पुराने कलेवर की 'अग्निशिखा' का यह हमारा ५५वाँ वर्ष चल रहा है।

सन्देश

वर दे, नववर्ष की उषा हमारे लिए भी एक नये और अधिक अच्छे जीवन की उषा हो।

*

माँ,

नववर्ष के सूर्यालोक की प्रथम किरण के साथ मेरे समस्त अज्ञान और अहं को दूर कर दीजिये।

अपने प्रकाश को मेरे अन्दर प्रज्वलित कीजिये और ऐसा हो कि यह प्रकाश मेरे अन्दर एक ऐसी चेतना को जन्म दे जो आपके परम आनन्द से भरपूर हो।

हाँ, नये वर्ष से अज्ञान के धुएँ को दूर करना होगा और प्रकाश को प्रज्वलित करना होगा।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २०१

सम्पादकीय : जीवन का चक्र अमुक-अमुक स्थितियों से गुज़रता है और हर एक स्थिति अपने साथ अपनी चुनौतियों और हर्षों के भण्डार को लाती है, उसी तरह जैसे ऋतुओं का चक्र अपने साथ नानाविध परिवर्तन लाता है। ये बदलाव और संक्रमण हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हैं।

इस अंक में हम जीवन की बदलती ऋतुओं पर चञ्चुपात करेंगे।

Bonne Année
Blessings

शुभ नववर्ष

चार आश्रम

भारतीय प्रणाली ने व्यक्ति के कठिन विकास को पूरी तरह से उसी के ऊपर नहीं छोड़ दिया, बल्कि उसे आन्तरिक पहलू का सहारा लेना सिखाया और उसने एक ढाँचा तैयार किया और उस पद्धति ने मानव-जीवन को सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर चढ़ने का रास्ता सुझाया। चार आश्रम की रचना के पीछे यही उद्देश्य था। उस प्रणाली ने जीवन को चार स्वाभाविक अवधियों या स्तरों में बाँट दिया और हर एक अवधि में जीवन के सांस्कृतिक विचार को रखा गया। विद्यार्थी-काल, गृहस्थ-जीवन, वानप्रस्थ-आश्रम और संन्यास अथवा परिव्राजक-काल। विद्यार्थी-काल में वह आधार बनाया जाता था कि विद्यार्थी को क्या सीखना है, क्या करना और क्या बनना है। इसमें आवश्यक कलाओं, विज्ञान तथा ज्ञान की विभिन्न विद्याओं का पूर्ण ज्ञान दिया जाता था, लेकिन इसमें फिर भी नैतिक क्रियाओं के अभ्यास पर ही पूरा ज़ोर दिया जाता था और पुराकाल में विद्यार्थी को वेद तथा आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा दी जाती थी। उस काल में यह शिक्षा शहर के जीवन से बहुत दूर, वनों के शान्त वातावरण में गुरु के सान्निध्य में दी जाती थी और गुरु भी सामान्यतया वे ही होते थे जिन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की विलक्षण सिद्धि पा ली हो। लेकिन अन्ततोगत्वा, आज के युग में शिक्षा अधिक बौद्धिक और सांसारिक बन गयी; यह बड़े-बड़े शहरों और विश्व-विद्यालयों में दी जाने लगी, इसका लक्ष्य विद्यार्थी की प्रकृति की आन्तरिक तैयारी और उसे सच्चा ज्ञान प्रदान करने की जगह अधिक सूचनाएँ बटोरने और मात्र बुद्धि के प्रशिक्षण का केन्द्र बन गया। लेकिन आरम्भ में, आर्य मनुष्य को कुछ हद तक अपने जीवन के चार महान् लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सचमुच तैयार किया जाता था; वे थे—अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर वह पहले तीन लक्ष्यों को पूरा करने में समर्थ होता था; वह गृहस्थ का स्वाभाविक जीवन जीता था, सभी वस्तुओं में रस लेता हुआ जीवन के सुखों का उपभोग करता था, समाज के ऋण को चुकाता और उसकी माँगों को पूरा करता था, और साथ ही अपने-आपको जीवन के अन्तिम उद्देश्य—संन्यास के लिए भी तैयार करता था। तीसरे आश्रम-काल, यानी वानप्रस्थ में वह वन में चला जाता था और एकान्तवास में अपनी

आत्मा के सत्य को प्राप्त करने में निरत रहता था। उस समय वह सामाजिक कठोर बन्धनों से मुक्त, विस्तृत स्वाधीनता में निवास करता था; लेकिन अगर चाहता तो अपने चारों ओर युवा विद्यार्थियों अथवा जिज्ञासुओं, यानी, उठती हुई नयी पीढ़ी को जुटा कर, अपने ज्ञान से लाभान्वित कर सकता, उनका आध्यात्मिक गुरु बन सकता था। जीवन के अन्तिम काल—संन्यासाश्रम में वह समस्त शेष बन्धनों को एकदम से काट कर फेंक सकता और सामाजिक जीवन के सभी रूपों से चरम आध्यात्मिक अनासक्ति के साथ, वन-वनान्तरों में विचरण कर सकता था। तब वह अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करता, वैश्व सत्ता के साथ एकात्म होकर, अपनी आत्मा को शाश्वत के लिए तैयार करता था। इस घेरे को पूरा करना सबके लिए अनिवार्य नहीं था। अधिकतर मनुष्य पहले दो स्तरों के परे जाते ही नहीं थे; कइयों का वानप्रस्थ तक पहुँचते-पहुँचते शरीर छूट जाता था। केवल कुछ ही होते थे जो अन्तिम अवस्था तक पहुँच पाते और संन्यास में चले जाते थे। लेकिन गभीर रूप से सोची गयी यह प्रणाली सचमुच लाभदायक थी और प्रत्येक अपने विकास के अनुसार इसे कभी एक जन्म में पूरा करता तो कभी जन्मों में।

CWSA खण्ड २०, पृ. १७४-७६

तुम जो सिखाना चाहते हो वह पहले तुम्हें जीना चाहिये।

नूतन चेतना के बारे में बोलने के लिए, उस चेतना को अपने अन्दर प्रवेश करने दो और उसे अपने रहस्य अनावरित करने दो। केवल तभी तुम कुछ क्षमता के साथ बोल सकते हो।

नूतन चेतना में ऊपर उठने के लिए पहली शर्त है, मन की इतनी विनयशीलता कि तुम्हें यह विश्वास हो कि जो कुछ तुम समझते हो कि तुम जानते हो वह, जो कुछ अभी तक सीखना बाक़ी है उसके आगे कुछ भी नहीं है।

बाहरी तौर पर जो कुछ तुमने सीखा है वह उच्चतर ज्ञान की ओर उठने में सहायक मात्र एक क़दम हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १२४

बचपन

बच्चा चिन्ता नहीं करता

बच्चा अपने विकास के बारे में चिन्ता नहीं करता, वह बस बढ़ता जाता है।

*

बच्चे के सरल विश्वास में बड़ी शक्ति होती है।

*

जब बच्चा सामान्य परिस्थितियों में रहता है, तो उसे सहज विश्वास होता है कि उसे जिन चीज़ों की ज़रूरत होगी वे सब उसे मिल जायेंगी।

यह विश्वास जीवन-भर अडिग बना रहना चाहिये, लेकिन बच्चे के अन्दर अपनी आवश्यकताओं का सीमित, अज्ञान-भरा और सतही ज्ञान होता है, उसकी जगह उत्तरोत्तर अधिक विशाल, अधिक गहरे और अधिक सत्य विचार को ले लेनी चाहिये जो अन्ततः आवश्यकताओं का पूर्ण ज्ञान बन जाये और परम प्रज्ञा के साथ मेल खाता हो, यहाँ तक कि हमें यह अनुभव हो जाये कि केवल *भगवान्* ही जानते हैं कि हमारी सच्ची आवश्यकताएँ क्या हैं और हम हर चीज़ के लिए *उन्हीं* पर निर्भर रह सकें।

*

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्त है विश्वास, एक बालक का-सा विश्वास और यह सरल भाव कि ज़रूरी चीज़ आ जायेगी, इसके बारे में कोई प्रश्न ही नहीं। जब बच्चे को किसी चीज़ की ज़रूरत होती है तो उसे विश्वास होता है कि वह आ ही जायेगी। इस प्रकार का सरल विश्वास या निर्भरता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्त है।

बच्चों में भय

बच्चों में भय क्यों होता है? क्योंकि वे कमज़ोर होते हैं।

वे अपने चारों ओर के वयस्क लोगों से शारीरिक तौर पर कमज़ोर होते हैं और साधारणतः प्राणिक और मानसिक तौर पर भी कमज़ोर होते हैं।

भय हीनता-भाव से पैदा होता है।

फिर भी, उससे छुटकारा पाने का एक उपाय है, और वह है : 'भागवत

कृपा' पर विश्वास रखना और सभी परिस्थितियों में रक्षा के लिए 'उसी' पर निर्भर रहना।

अन्तरात्मा से सम्पर्क भय को मुक्त कर देता है

तुम जैसे-जैसे विकसित होते जाओगे, वैसे-वैसे अपने भय पर विजय पाते जाओगे, यदि तुम अपने अन्दर अन्तरात्मा—यानी, अपनी सत्ता के सत्य—के साथ सम्पर्क को विकसित होने दो, और यदि तुम हमेशा यह प्रयास करो कि तुम जो कुछ सोचो, जो कुछ बोलो, जो कुछ करो वह सब इस गहन सत्य की अधिकाधिक अभिव्यक्ति हो।

जब तुम सचेतन रूप से उसमें निवास करोगे, तो फिर तुम्हें अपने जीवन के किसी भी क्षेत्र में किसी चीज़ का भय न रहेगा, क्योंकि तुम उस वैश्व 'सत्य' के साथ एक हो जाओगे जो संसार पर शासन करता है।

सत्य को जानना

मधुर माँ,

हमें बचपन में बताया जाता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है और हम सारे जीवन यही रट लगाये रहते हैं कि "यह अच्छा है! वह बुरा है!" वास्तव में, यह कैसे जाना जाये कि क्या अच्छा है और क्या बुरा?

तुम सत्य को तभी जान सकते हो जब तुम भगवान् के बारे में सचेतन होते हो।

*

मैं भूल-भ्रान्ति से कैसे बच सकता हूँ?

यह जान कर कि सत्य क्या है।

*

प्रभो, हम तुझसे प्रार्थना करते हैं :

हम ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकें कि हम यहाँ क्यों हैं,
हमें यहाँ जो करना है उसे ज़्यादा अच्छी तरह कर सकें,

हमें यहाँ जो बनना चाहिये वह बन सकें,
ताकि तेरी इच्छा सामञ्जस्य के साथ पूरी हो सके।

माँ और बच्चे

मधुर माँ, वर दे कि इस क्षण और सदा ही हम
तेरे सरल बालक बने रहें,
और हमेशा तुझसे अधिक-से-अधिक प्रेम करते रहें।

*

मेरी एक छोटी-सी अम्मी रहती मेरे हिय में;
हम दोनों मिल मुदित हुए हैं, कभी न बिछुड़ें माँ, हम।

*

मधुर माँ,
क्या जब कभी मैं आपको बुलाता हूँ तो आप मुझे सुन सकती हैं?

मेरे प्रिय बालक,

विश्वास रखो कि तुम जब कभी मुझे बुलाते हो तो मैं सुनती हूँ और मेरी सहायता एवं मेरी शक्ति सीधी तुम्हारी ओर जाती हैं।

मेरे आशीर्वाद सहित।

*

शुभ जन्मदिन।

पूरी हार्दिकता के साथ मैं तुम्हें अपनी बाँहों में भरती हूँ और तुम्हारी उच्चतम अभीप्सा की पूर्ति के लिए अपने आशीर्वाद देती हूँ।

सप्रेम।

*

शुभ जन्मदिन,

गुलाबों (समर्पण) के एक पूरे गुच्छे के साथ ताकि तुम्हारी अभीप्सा चरितार्थ हो और तुम मेरे आदर्श बालक बन जाओ जो अपनी अन्तरात्मा से और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य से अवगत हो।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

*

('दॉत्वॉर छात्रावास' के विद्यार्थियों के लिए सन्देश)

हम सब अपनी दिव्य जननी के सच्चे बालक बनना चाहते हैं। लेकिन मधुर माँ, उसके लिए हमें धीरज और साहस, आज्ञाकारिता, सद्भावना, उदारता और निःस्वार्थता तथा अन्य सभी आवश्यक गुण प्रदान कीजिये।

यही हमारी प्रार्थना और अभीप्सा है।

*

(बड़े लड़कों के छात्रावास के लिए)

यह दिन तुम्हारे लिए एक नये जीवन का आरम्भ हो, एक ऐसे जीवन का जिसमें तुम यह अधिकाधिक जानने की कोशिश करो कि तुम यहाँ क्यों हो और तुमसे क्या आशा की जाती है।

हमेशा अपनी पूर्णतम और सत्यतम पूर्णता को चरितार्थ करने की अभीप्सा में निवास करो।

और आरम्भ के लिए स्वयं अपने ऊपर लगाये गये कठोर अनुशासन में ईमानदार, सच्चे, स्पष्टवक्ता, उदात्त और पवित्र होने की चेष्टा करो।

मैं हमेशा तुम्हारी सहायता करने और राह दिखाने के लिए उपस्थित रहूँगी।

मेरे आशीर्वाद।

*

(संलग्न 'दॉत्वॉर' छात्रावास के लिए)

आज, हम सब जो एक सामूहिक स्मरण में इकट्ठे हुए हैं, यह अभीप्सा करते हैं कि यह तीव्रता उस सच्चे ऐक्य का प्रतीक हो जो सदा-सर्वदा अधिक सच्ची और अधिक पूर्ण उपलब्धियों के लिए सामूहिक प्रयास पर आधारित हो।

*

(युवकों का छात्रावास)

हमेशा अपने 'आदर्श' के प्रति निष्ठावान्, अपनी क्रिया में सच्चे रहो।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. १३५-४०

हम संख्या नहीं, एक चयन चाहते हैं;
हम प्रखर विद्यार्थी नहीं, सजीव आत्माएँ चाहते हैं। श्रीमाँ

बच्चों को सिखाने का नया तरीक़ा

बच्चों को बचपन में ही शिक्षा तथा कार्य का नया तरीक़ा सिखाना रुचिकर होगा। बहुत छुटपन में इसे करना बहुत आसान होता है। हमें ऐसे विलक्षण शिक्षकों की ज़रूरत है जिन्हें पहले तो इतना शिक्षित होना चाहिये कि विद्यार्थी की किसी भी जिज्ञासा को वे शान्त कर सकें, यानी, भले उन्हें अनुभव न हो, लेकिन ज्ञान तो होना ही चाहिये (अनुभव हो तो और भी अच्छा), वास्तव में उन्हें हमेशा सच्चा अन्तःप्रेरित बौद्धिक मनोभाव रखना चाहिये... (इस क्षमता को उन्हें दिनानुदिन विकसित करते रहना चाहिये)। बहरहाल, उन्हें इसका ज्ञान होना ही चाहिये कि जानने का सच्चा तरीक़ा मानसिक नीरवता में ही पाया जा सकता है, ऐसी जागरूक नीरवता में जो सत्य 'चेतना' की ओर मुड़ी हुई हो और शिक्षक के अन्दर वहाँ से जो आये उसे ग्रहण करने की क्षमता भी हो। सर्वोत्तम तो यही होगा कि शिक्षक के अन्दर यह क्षमता हो; हर हालत में, उन्हें यह समझना चाहिये कि शिक्षा प्रदान करने का यही सच्चा तरीक़ा है, साथ ही उनसे यह भी कहना होगा कि यह तरीक़ा न केवल शिक्षा में प्रयुक्त होना चाहिये बल्कि ज्ञान के सभी क्षेत्रों में, जीवन के सभी क्षेत्रों में इसका उपयोग होना चाहिये; यानी, व्यक्ति को किसी भी चीज़ को करने के लिए नीरवता में ज़रूर यथार्थ निर्देश पा सकने चाहियें, तभी स्पष्ट निर्देशन मिलते हैं कि क्या करना चाहिये और कब करना चाहिये। कम-से-कम शिक्षा में तो जैसे ही बच्चों के अन्दर सोचने-विचारने की शक्ति आ जाये (यह सात साल की उम्र में शुरू होती है और चौदह-पन्द्रह तक बहुत स्पष्ट होने लगती है) तो सात वर्ष की आयु में उन्हें सच्ची शिक्षा के पहले संकेत और चौदह में पूरी व्याख्या देनी चाहिये कि सच्ची शिक्षा कैसे प्राप्त की जा सकती है और यह भी कि चीज़ों की गभीरतर सच्चाई के साथ सम्पर्क में आने का यह एकमात्र उपाय है; साथ ही उनसे यह भी कहना चाहिये कि बाक़ी सभी कुछ उस चीज़ का बेढंगा मानसिक अनुमान है जिसे तुम सीधे, प्रत्यक्ष रूप में जान सकते हो।

तो इसका निष्कर्ष यह है कि स्वयं अध्यापकों को कम-से-कम अनुशासन और अनुभव का एक सच्चा और निष्कपट आरम्भ तो करना चाहिये : यह किताबों का ढेर लगाने और समान चीज़ों को दोहराने-तिहराने का प्रश्न नहीं है। अध्यापक बनने का यह तरीक़ा नहीं है—सारा संसार इसी

तरह का है, अगर बाहर वालों को इसी में ख़ुशी मिले तो रहने दो उनके लिए इसे ऐसा ही! जहाँ तक हमारी बात है, हम प्रचारक नहीं हैं, हम बस यही दिखाना चाहते हैं कि क्या किया जा सकता है और यह साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि इसे ही करना चाहिये।

जब तुम छोटे बच्चों के साथ आरम्भ करते हो, तो बहुत अद्‌भुत होता है! उनके साथ तुम्हें बहुत कम काम करना होता है : बस **होना** ही पर्याप्त होता है।

५ अप्रैल १९६७ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

अध्यापक और बच्चे

कभी कोई भूल न करो।

कभी नाराज़ न होओ।

हमेशा समझो।

समझो और स्पष्ट रूप में यह देखो कि बच्चे में यह गति क्यों हुई, वह आवेग क्यों उठा, बच्चे की आन्तरिक बनावट कैसी है, उसके अन्दर की कौन-सी चीज़ को मज़बूत बनाना और प्रकाश में लाना है। तुम्हें बस यही करना है, और फिर उन्हें छोड़ दो : उन्हें खिलने के लिए छोड़ दो, बस उन्हें बहुतेरी चीज़ें देखने का, बहुत-सी चीज़ों का स्पर्श करने का, जितना सम्भव हो उतनी चीज़ें करने का अवसर दो। यह बहुत ही मज़ेदार, आनन्ददायक होता है। और सबसे बढ़ कर, उनके ऊपर कोई भी ऐसी चीज़ लादने की कोशिश मत करो जिसे तुम जानते हो।

उन्हें कभी मत डाँटो, समझने की कोशिश करो, और अगर बच्चा समर्थ है तो उसे समझाओ। अगर वह किसी व्याख्या को समझने में समर्थ न हो (अगर तुम स्वयं समर्थ हो), तो मिथ्या स्पन्दन को सच्चे में बदल दो। लेकिन यह... यह अध्यापकों से उस पूर्णता की माँग करना है जो उनके अन्दर विरले ही होती है।

लेकिन, अध्यापकों के लिए एक कार्यक्रम की परियोजना बनाना, यानी, अध्ययन के लिए एक यथार्थ कार्यक्रम बनाना बहुत रुचिकर होगा, इसमें शुरू करना चाहिये एकदम छोटे बच्चों से—वे इतने नमनीय और लचीले होते हैं कि हर एक चीज़ उन पर बहुत गहरी छाप छोड़ जाती है! बहुत

बचपन में अगर उन्हें सच्चाई की कुछ बूँदें दे दी जायें तो जैसे-जैसे उनकी सत्ता पनपेगी वे बिलकुल स्वाभाविक रूप से खिलते जायेंगे।

करने के लिए यह बहुत ही भव्य कार्य होगा।

५ अप्रैल १९६७ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

नैतिक प्रशिक्षण का नियम

नैतिक प्रशिक्षण का पहला नियम है, सुझाव देना या निमन्त्रण देना। सुझाव देने का सबसे अच्छा तरीक़ा है, व्यक्तिगत उदाहरण, रोज़ की बातचीत और रोज़ाना पढ़ी जाने वाली किताबें। छोटे बच्चों के लिए इन किताबों में भूतकाल के महान् उदाहरण नैतिक सीख के रूप में नहीं, मानव रस के उत्कृष्ट उदाहरणों के रूप में दिये जायें और बड़े विद्यार्थियों के लिए महान् आत्माओं के महान् विचार, उच्चतम भावों को जगाने वाले, उच्चतम आदर्शों और अभीप्साओं को प्रेरित करने वाले साहित्य के अंश, इतिहास और जीवनी के ऐसे प्रसंग जो इन महान् विचारों, उदात्त भावों और अभीप्सा-भरे आदर्शों को जीवन में उतारने के उदाहरण हों। यह ऐसा सत्संग है जो प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता, बशर्ते कि आडम्बरपूर्ण उपदेशों से बचा जाये। यह बहुत ज़्यादा प्रभावशाली हो सकता है यदि स्वयं अध्यापक का जीवन उन महान् आदर्शों में ढला हो जिन्हें वह अपने विद्यार्थियों के सामने रख रहा है। फिर भी इसमें पूरी शक्ति तब तक नहीं आ सकती जब तक युवा जीवन को अपने सीमित क्षेत्र में, अपने अन्दर उठने वाले नैतिक आवेगों को मूर्त रूप देने का अवसर न मिले। आर्यों के विशेष गुण ये हैं : ब्राह्मण के लिए ज्ञान-पिपासा, आत्मोत्सर्ग, पवित्रता और त्याग; क्षत्रिय के लिए साहस, उत्साह, स्वमान, उदात्तता, शौर्य; वैश्य के लिए उपकारिता, कौशल, उद्योग, उदारतापूर्ण उद्यम और मुक्तहस्तवृत्ति; और शूद्र के लिए निःस्वार्थ और प्रेमपूर्ण सेवा। ये गुण हैं जिन्हें हम अपने युवकों में और सारे राष्ट्र में देखना चाहते हैं। लेकिन यदि हम बच्चों को अपने-आपको आर्य-परिपाटी के अनुसार प्रशिक्षित करने का अवसर न दें, बचपन और किशोरावस्था के अभ्यास और परिचय के द्वारा वह द्रव्य तैयार न करने दें जिससे उनका प्रौढ़ जीवन बनेगा तो यह कैसे सम्भव हो सकता है?

इसलिए हर बच्चे को उसके स्वभाव में जो कुछ सर्वोत्तम है उसे

विकसित करने के लिए क्रियात्मक अवसर और बौद्धिक प्रोत्साहन मिलना चाहिये। अगर उसके अन्दर मन या शरीर के दुर्गुण, बुरी आदतें, बुरे संस्कार हों तो उसके साथ अपराधी-जैसा व्यवहार न किया जाये, बल्कि राजयोग के बताये गये संयम, त्याग और प्रस्थापना के द्वारा उनसे पिण्ड छुड़ाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये। उसे इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाये कि वह इन चीज़ों को पाप या अपराध के रूप में न लेकर एक साध्य रोग के लक्षणों के रूप में ले, यह जाने कि स्थिर और सतत संकल्प के प्रयास से इन्हें बदला जा सकता है। जब कभी मन में मिथ्यात्व सिर उठाये तो उसे अस्वीकार करके उसकी जगह सत्य को बिठाया जाये, भय के स्थान पर साहस, स्वार्थ की जगह त्याग और आत्मोत्सर्ग, दुर्भावना की जगह प्रेम को लाया जाये। इस बात की विशेष सावधानी रखनी होगी कि कहीं अस्पष्ट और अविकसित गुणों को दोष मान कर न त्याग दिया जाये। बहुत-से युवा स्वभावों में जंगलीपन और लापरवाही, बहुत अधिक बल, महानता और उदात्तता के उफान होते हैं। उन्हें दबाने की जगह शुद्ध करना चाहिये।

CWSA खण्ड १, पृ. ३९०-९२

बच्चों में सचेतन अभीप्सा

जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है और जिसे मैं "शुभ-जात" कहती हूँ, अर्थात् वह सचेतन चैत्य-पुरुष के साथ जन्म लेता है तो उस बालक के सपनों में सदा इस प्रकार की अभीप्सा रहती है जो उसकी बाल-चेतना के लिए एक प्रकार की महत्त्वाकांक्षा होती है, वह अभीप्सा किसी ऐसी चीज़ के लिए होती है जो सुन्दर-ही-सुन्दर है, जहाँ कुरूपता का नाम नहीं, जहाँ, बस, न्याय है, अनीति या अन्यायाचरण नहीं, जहाँ अपार सौजन्य है और अन्त में जहाँ सचेतन और सतत रूप से मिलने वाली सफलता-ही-सफलता है और जहाँ नित्य-निरन्तर चमत्कार-पर-चमत्कार होते हैं। जब वह छोटा होता है तो चमत्कारों के ही सपने लेता है, वह चाहता है कि सब दुष्टता और दुर्जनता मिट जायें, प्रत्येक वस्तु सदा प्रकाशपूर्ण, सुन्दर और आनन्दमय बनी रहे, वह उन कहानियों को पसन्द करता है जो सुखान्त होती हैं। यही चीज़ है जिस पर तुम्हें निर्भर करना चाहिये। जब शरीर दुःख-दर्द महसूस

करता हो तथा अपनी अक्षमता एवं अशक्तता महसूस करता हो तो उसे ऐसी शक्ति के सपने दो जिसके सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं, ऐसे सौन्दर्य के जिसमें कोई कुरूपता नहीं और अद्‌भुत क्षमताओं के सपने दो : बालक ऐसे-ऐसे सपने लेता है कि वह हवा में उड़ सकता है, जहाँ ज़रूरत हो वहाँ उपस्थित हो सकता है, जब चीज़ें ग़लत हो रही हों तो वह उन्हें ठीक कर सकता है, बीमारों को अच्छा कर सकता है; सचमुच ही, बचपन में व्यक्ति इसी प्रकार के सब सपने लेता है...। सामान्यतः माता-पिता और शिक्षक इन सब पर पानी फेर देते हैं, यह कह कर कि "ओह! वह, वह तो सपना है, वह वास्तविकता नहीं है।" जब कि होना इससे ठीक उलटा चाहिये। बच्चों को बताना चाहिये कि "हाँ, यही चीज़ है जिसे सिद्ध करने का तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये और यह केवल सम्भव ही नहीं, बल्कि **सुनिश्चित** भी है, बशर्ते तुम अपने अन्दर उस वस्तु के सम्पर्क में आ जाओ जिसमें इसे करने की सामर्थ्य है। इसी को तुम्हारे जीवन का पथ-प्रदर्शन करना चाहिये, उसमें व्यवस्था लानी चाहिये और उस **सच्ची वास्तविकता** की ओर तुम्हें विकसित करना चाहिये जिसे दुनिया भ्रम समझती है।"

ऐसा ही होना चाहिये, बजाय इसके कि बच्चों को साधारण मामूली बच्चे बना डाला जाये, जिनकी समझ सादी और गँवारू होती है, जिसमें ऐसी सत्यानासी आदत जम कर बैठ जाती है कि जहाँ कहीं कुछ अच्छा शुरू हुआ नहीं कि झट यह विचार ऊपर उठ आता है कि "ओह! ऐसा ज़्यादा दिन नहीं चलेगा!" जब कोई व्यक्ति मधुर और शिष्ट बर्ताव करता है तो यह छाप कि "ओह! वह बदल जायेगा!" जब तुम किसी चीज़ को सम्पन्न करने में समर्थ हो जाते हो तो यह भावना, "ओह! कल मैं इसे इतनी अच्छी तरह न कर सकूँगा।" यह चीज़ तुम्हारे अन्दर सब कुछ को नष्ट कर देने वाले तेज़ाब की तरह काम करती है, और यह भविष्य की सम्भावनाओं में से आशा, निश्चयता और आत्म-विश्वास को हर लेती है।

बालक जब उत्साह से भरा हो तो उसके उत्साह पर कभी ठण्डा पानी न डालो। उससे कभी यह न कहो, "देखो, जीवन इस प्रकार का नहीं है!" बल्कि तुम्हें उसको हमेशा उत्साहित करना चाहिये, उससे कहना चाहिये, "हाँ, अभी तो चीज़ें बेशक उस प्रकार की नहीं हैं, वे कुरूप *प्रतीत* होती हैं, परन्तु इनके पीछे एक सौन्दर्य है जो अपने-आपको प्रकट करने का प्रयत्न

कर रहा है। उसी के लिए प्रेम पैदा करो, उसी को अपनी ओर आकर्षित करो। उसी को अपने सपनों और महत्त्वाकांक्षाओं का विषय बनाओ।"

और यदि इस काम को तभी किया जाये जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है तो उससे कठिनाई तब की अपेक्षा बहुत कम होती है जब बाद में उसे इन सब चीज़ों को रद्द करना पड़ता है, बुरी शिक्षा-जन्य बुरे परिणामों को मिटाना होता है और उस प्रकार की मूढ़ तथा तुच्छ सामान्य बुद्धि से मुक्त होना होता है जो जीवन से किसी अच्छी चीज़ की आशा नहीं करती, उसे नीरस और दुःखदायी बना डालती है, फलस्वरूप सब आशाएँ और सौन्दर्य के सब तथाकथित मिथ्या सपने खण्डित हो जाते हैं। इसके विपरीत, तुम्हें बच्चे से—और यदि तुम गोद के बच्चे न हो तो अपने-आपसे—यह कहना चाहिये, "मुझमें जो कुछ अवास्तविक, असम्भव, भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है *वही* वास्तव में सत्य है और *उसे* ही मुझे संवर्धित करना है।" जब मेरे अन्दर यह अभीप्सा है कि "मैं किसी असमर्थता द्वारा सदा के लिए सीमित नहीं रहूँगा और किसी अशुभ भावना द्वारा हमेशा के लिए रुद्ध नहीं रहूँगा!", तो यह भी ज़रूरी है कि मैं अपने अन्दर इस विश्वास को बढ़ाऊँ कि **यही चीज़** है जो वस्तुतः सत्य है और **इसे** ही मुझे जीवन में पाना है।

तब शरीर के कोषाणुओं में विश्वास जाग्रत् हो जाता है। और तुम देखोगे कि स्वयं शरीर के अन्दर भी तुम्हें एक प्रत्युत्तर मिलता है। स्वयं शरीर अनुभव करेगा कि यदि आन्तरिक संकल्प सहायता करे, दृढ़ता प्रदान करे, दिशा-निर्देश कर तुम्हें आगे ले चले तो हाँ, उसकी सभी सीमाएँ, सभी अक्षमताएँ धीरे-धीरे दूर हो जायेंगी।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड ९, पृ. १७९-८१

शरीर में विजय का विश्वास हो

और यदि तुम्हें, जब तुम बहुत छोटे हो तभी से, एकदम बचपन से, धोखा देने वाली, अवसाद लाने वाली, बल्कि विघटन लाने वाली या यूँ कहूँ, नष्ट-भ्रष्ट कर देने वाली चीज़ें सिखायी जायें तो बेचारा यह शरीर अपनी पूरी कोशिशों के बावजूद बिगड़ चुका होता है, स्वास्थ्य खो चुका होता है और अपनी आन्तरिक सामर्थ्य, अपनी आन्तरिक शक्ति, और प्रतिक्रिया की क्षमता का भी इसे बोध नहीं रहता।

पर यदि तुम ध्यान रखो कि यह बिगड़ने न पाये तो शरीर में अपने ही अन्दर 'विजय' का विश्वास होता है। विचार का ग़लत उपयोग और उससे शरीर पर पड़ा प्रभाव ही शरीर से उसकी विजय की निश्चिति को छीन लेता है। तो, करने-लायक़ पहली चीज़ है इस विश्वास को नष्ट करने की बजाय इसका पोषण एवं संवर्धन करना; और जब यह हो तो अभीप्सा के प्रयत्न की ज़रूरत नहीं रहती, फिर तो, बस, उस विजय में इसी आन्तरिक विश्वास का बिलकुल सहज रूप में प्रस्फुटन या उन्मीलन होता है।

शरीर अपने अन्दर दिव्य होने का भाव लिये रहता है। तो यदि तुमने इसे खो दिया है तो इसे अपने अन्दर पुनः प्राप्त करने की कोशिश करो।

जब कोई बालक तुम्हें ऐसा सुन्दर सपना सुनाये जिसमें उसके पास बहुत सारी शक्तियाँ थीं और सब कुछ बहुत सुन्दर था तो ध्यान रखो, उससे ऐसा कभी न कहो, "ओह! जीवन इस प्रकार का नहीं है," क्योंकि ऐसा करना ग़लत होगा। इसके विपरीत, उससे कहो, "जीवन **ऐसा ही होना चाहिये** और इसी प्रकार का **होगा**!"

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १८२-८३

शरीर जानता है

अपनी सामान्य स्थिति में, अर्थात्, मानसिक धारणाओं या प्राणिक आवेगों का कोई हस्तक्षेप न हो तो, शरीर यह भली-भाँति जानता है कि उसके लिए कौन-सी चीज़ अच्छी और आवश्यक है; पर इस प्रकार की स्थिति सामान्य रूप से केवल तभी आ सकती है जब कि बच्चे को ख़ूब सावधानी के साथ शिक्षा दी गयी हो और वह कामनाओं को आवश्यकताओं से पृथक् करना सीख गया हो। जो भोजन सादा और स्वास्थ्यप्रद हो, सार-तत्त्व से भरपूर और भूख बढ़ाने वाला हो, सब प्रकार की व्यर्थ की जटिलताओं से रहित हो, उसका स्वाद उसे पड़ना चाहिये। उसे अपने रोज़ के भोजन में उन सब चीज़ों से अवश्य परहेज़ रखना चाहिये जो महज़ पेट को भर देती और भारीपन ले आती हैं; विशेषकर उसे यह सिखाना चाहिये कि वह अपनी भूख के अनुसार भोजन करे, न अधिक, न कम, न कि अपने लोभ और पेटूपन को तृप्त करने का एक अवसर समझ कर। बिलकुल बचपन से ही हमें यह जान लेना चाहिये कि हम अपने शरीर को सबल और स्वस्थ रखने के लिए भोजन

करते हैं, जीभ के स्वादों का मज़ा लेने के लिए नहीं। बच्चे को वही भोजन देना चाहिये जो उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल हो, स्वास्थ्य और स्वच्छता-सम्बन्धी नियमों के अनुसार बना हो, जो खाने में स्वादिष्ट हो और फिर भी बहुत सादा हो। यह भोजन बच्चे की उम्र और उसकी नियमित गतिविधियों के अनुसार चुना और नपा होना चाहिये। इसमें वे सभी रासायनिक पोषक तत्त्व होने चाहियें जो शरीर के सभी अंगों के विकास और सन्तुलित वृद्धि के लिए आवश्यक हैं।

क्योंकि जब बच्चे को वही भोजन दिया जायेगा जो उसके स्वास्थ्य की रक्षा करने और आवश्यक शक्ति प्रदान करने के लिए सहायक होगा तो हमें इस विषय में ख़ूब सावधान रहना चाहिये कि बच्चे को परेशान करने या दण्ड देने के एक उपाय के रूप में भोजन का उपयोग न किया जाये। बच्चे को यह कहने की आदत कि तुम अच्छे बच्चे नहीं हो, तुम्हें तीसरे पहर का कलेवा नहीं दिया जायेगा, इत्यादि, बहुत हानिकारक है। ऐसा कह कर तुम उसकी नन्हीं-सी चेतना में यह संस्कार उत्पन्न कर देते हो कि भोजन उसे मुख्यतः उसकी लोभ-लालसा को तृप्त करने के लिए दिया जाता है, न कि इसलिए कि वह उसके शरीर के अच्छे ढंग से कार्य करते रहने के लिए अनिवार्य है।

डर मत बैठाओ

एक दूसरी बात बच्चे को एकदम बाल्यकाल में ही सिखानी चाहिये और वह है—स्वच्छता और स्वास्थ्य-सम्बन्धी आदतों के प्रति अनुराग। अगर तुम चाहते हो कि स्वच्छता के लिए यह अनुराग, स्वास्थ्य के नियमों के लिए आदर-भाव बच्चे में दिखायी दें तो तुम्हें बड़ी सावधानी के साथ यह ख़याल भी रखना चाहिये कि कहीं तुम उसके अन्दर बीमारी का भय न भर दो। भय शिक्षा के लिए सबसे बुरा साधन है, क्योंकि यह भय के विषय को खींच ले आने का सबसे अधिक निश्चित पथ है। फिर भी, जहाँ एक ओर बीमारी का भय नहीं होना चाहिये, वहाँ दूसरी ओर उसमें किसी प्रकार की रुचि होनी भी उचित नहीं। यह एक प्रचलित विश्वास है कि तीक्ष्ण बुद्धिवाले लोगों का शरीर दुर्बल होता है। यह भ्रम है और इसका कोई आधार नहीं। सम्भवतः कभी एक युग था जब शारीरिक असन्तुलन

के प्रति लोगों की एक विचित्र और अस्वस्थ रुचि थी, पर सौभाग्य की बात है कि वह प्रवृत्ति अब लुप्त हो गयी है। आजकल लोग सुगठित, समृद्ध, मांसल, बलिष्ठ और पूर्ण सुडौल शरीर की प्रशंसा करते हैं और उसका सच्चा मूल्य समझते हैं। पर, जो हो, बच्चों को यह शिक्षा देनी चाहिये कि वे स्वास्थ्य को आदर की दृष्टि से देखें, उस स्वस्थ मनुष्य की प्रशंसा करें जिसका शरीर बीमारी के आक्रमण को दूर फेंक देने की कला जानता है। बहुत बार बच्चे बीमारी का बहाना करते हैं ताकि वे किसी आवश्यक, किन्तु कष्टपूर्ण कार्य से बच जायें, उस कार्य से बच जायें जिसमें उनकी रुचि नहीं, अथवा उनके माता-पिता का हृदय पसीज जाये और वे उनकी इच्छा को तृप्त कर दें। बच्चे को यथासम्भव शीघ्र-से-शीघ्र यह भी सिखा देना चाहिये कि यह पद्धति बहुत लाभदायी नहीं है और बीमार हो जाने पर लोग तुम में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखलायेंगे, बल्कि उससे विपरीत अवस्था में दिखलायेंगे। दुर्बल लोगों में यह विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है कि उनकी दुर्बलता उन्हें विशेष रूप से लोगों का प्रिय बना देती है और वे लोग, यदि आवश्यक हो, अपने साथ और इर्द-गिर्द रहने वाले लोगों का ध्यान, सहानुभूति अपनी ओर आकर्षित करने के एक साधन के रूप में अपनी इस दुर्बलता का और, यहाँ तक कि अपनी बीमारी का उपयोग करते हैं। किसी भी कारण से इस घातक प्रवृत्ति को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिये। बच्चों को सिखाना चाहिये कि बीमार होना कमज़ोरी और हीनता का सूचक है, न कि किसी गुण या त्याग का।

इसलिए, जब बच्चा अपने अंगों का व्यवहार करने-योग्य हो जाये तब प्रतिदिन कुछ समय अपने शरीर के सभी भागों को विधिपूर्वक और नियमित रूप से विकसित करने में लगाये। प्रत्येक दिन २० से ३० मिनट तक—अगर सम्भव हो तो सवेरे बिछौने से उठने के बाद का समय अधिक अच्छा होगा—यदि लगाये जायें तो वे मांसपेशियों में अच्छी गति और सन्तुलित वृद्धि ले आने के लिए पर्याप्त होंगे। साथ ही, उससे जोड़ों और रीढ़ की हड्डी की अकड़न भी रुक जाती है जो कि, साधारणतया, हमारे सोचने से पहले ही आ जाती है। बच्चों की शिक्षा के साधारण कार्यक्रम के अन्दर खेल-कूद को काफ़ी अच्छा स्थान देना चाहिये, इससे उसे वह स्वास्थ्य प्राप्त होगा जो दुनिया-भर की औषधियाँ नहीं दे सकतीं। अगर धूप में एक घण्टा घूम लिया जाये तो

कमज़ोरी या ख़ून की कमी दूर करने में वह बलवर्धक दवाओं (टॉनिकों) के समूचे भण्डार से कहीं अधिक काम करता है। मैं तो तुम्हें यह सलाह दूँगी कि जब तक दूसरी तरह से काम चलाना पूर्ण रूप से असम्भव न हो जाये तब तक कभी औषधि मत लो; और इस "पूर्ण रूप से असम्भव" के विषय में भी तुम्हें पूर्ण रूप से नियमनिष्ठ होना चाहिये। यद्यपि शारीरिक व्यायामों के लिए कुछ जाने-माने दिशा-निर्देश हैं जिनके द्वारा शरीर का उत्तमोत्तम विकास किया जा सकता है; फिर भी, यदि किसी पद्धति को पूर्ण रूप से फलदायी बनाना हो तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र रूप से विचार करना चाहिये और उसके लिए कोई पद्धति निश्चित करने के लिए यदि सम्भव हो तो किसी सुयोग्य व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिये, अथवा इस विषय से सम्बन्धित पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिये। ऐसी पुस्तकें काफ़ी छप चुकी हैं और अभी भी छप रही हैं।

नींद, कसरत, विश्राम

लेकिन, हर हालत में, बच्चे को, चाहे वह जो कुछ भी करता हो, सोने के लिए काफ़ी समय मिलना चाहिये। यह समय उम्र के अनुसार अलग-अलग हो सकता है। पालने के बच्चे को जगे रहने की अपेक्षा सोना अधिक चाहिये। पर जैसे-जैसे बच्चा बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे सोने का समय कम होता जायेगा। परन्तु युवा अवस्था आने तक, यह समय ८ घण्टे से कम नहीं होना चाहिये और फिर सोने का स्थान ख़ूब शान्त और हवादार होना चाहिये। और कभी व्यर्थ में बच्चे को प्रारम्भिक रात की नींद से वञ्चित नहीं करना चाहिये। स्नायुओं को आराम पहुँचाने के लिए आधी रात से पहले का समय सबसे उत्तम है। फिर दिन में जगे रहने के समय भी, प्रत्येक व्यक्ति के लिए, जो अपनी स्नायुओं में समतोलता बनाये रखना चाहता है, विश्राम करना अत्यन्त आवश्यक है। मांसपेशियों और स्नायुओं को विश्राम देने की विधि जानना एक कला है और बिलकुल छोटी अवस्था में ही बच्चे को इसकी शिक्षा देनी चाहिये। पर बहुत-से माता-पिता इसके विपरीत, अपने बच्चों को निरन्तर कार्य करते रहने के लिए बाध्य करते हैं। जब बच्चा चुपचाप बैठता है तब वे समझते हैं कि वह बीमार हो गया है। यहाँ तक कि ऐसे माता-पिता भी हैं जिन्हें अपने बच्चों से घरेलू काम

कराने की बुरी आदत होती है, और इस तरह वे बच्चों के आराम करने का समय ले लेते हैं। एक बढ़ते हुए स्नायुमण्डल के लिए इससे अधिक बुरी चीज़ और कोई नहीं। अत्यन्त लगातार होने वाले प्रयास का दबाव अथवा स्वेच्छा से चुना हुआ काम न होकर लादे गये काम का बोझ सहने में वह असमर्थ होता है। समस्त प्रचलित मान्यताओं और धारणाओं के विरुद्ध मेरा तो मत यह है कि बच्चों से सेवा की माँग करना उचित नहीं है, यह समझना अनुचित है कि माता-पिता की सेवा करना बच्चे का कर्तव्य है। बल्कि अधिक बड़ा सत्य इसके विपरीत है : निश्चय ही यही स्वाभाविक है कि माता-पिता अपने बच्चों की सेवा करें, कम-से-कम उनकी अधिकतम देखभाल करें। यदि बच्चा स्वयं, बिना दबाव के परिवार के लिए काम करना पसन्द करे और कार्य को खेल के रूप में करे तभी उसे ऐसा करने देना उचित है। और उस हालत में भी हमें इस विषय में सावधान रहना चाहिये कि किसी तरह उसके आराम का समय कम न हो जाये जो उसकी शारीरिक स्वस्थता के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अच्छे स्वास्थ्य का सम्मान करो

मैं कह चुकी हूँ कि बिलकुल छोटी उम्र से ही बच्चों को शारीरिक स्वास्थ्य, शक्ति-सामर्थ्य और सन्तुलन का सम्मान करना सिखाना चाहिये। सौन्दर्य की महान् आवश्यकता के ऊपर भी ख़ूब ज़ोर देना चाहिये। छोटे-छोटे बच्चों में सौन्दर्य की अभीप्सा होनी चाहिये, इसलिए नहीं कि दूसरे उससे प्रसन्न होंगे या उससे उनका नाम होगा, बल्कि स्वयं सौन्दर्य के प्रेम के लिए सौन्दर्य की चाह होनी चाहिये। क्योंकि, सौन्दर्य वह आदर्श है जिसे भौतिक जीवन में संसिद्ध करना है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर यह सम्भावना निहित है कि वह अपने शरीर के विभिन्न अंगों में तथा उसकी विभिन्न गतियों में सामञ्जस्य स्थापित करे। मनुष्य का शरीर, यदि वह अपने जीवन के आरम्भ से ही शारीरिक व्यायाम आदि का विधिवत् अनुसरण करे तो वह अपना सामञ्जस्य स्थापित कर सकता है और इस तरह सौन्दर्य अभिव्यक्त करने के योग्य हो सकता है। जब हम सर्वांगपूर्ण शिक्षा के अन्यान्य पहलुओं की चर्चा करेंगे तब हम देखेंगे कि एक दिन, यदि इस सौन्दर्य को अभिव्यक्त होना है तो उसके लिए हमें किन आन्तरिक शर्तों को पूरा करना होगा।

अब तक मैंने केवल बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा की बात कही है; क्योंकि उचित समय पर दिये जाने वाले विवेकपूर्ण शारीरिक शिक्षण के द्वारा बहुत-से शारीरिक दोषों को, कुरूपताओं को दूर किया जा सकता है। पर अगर किसी कारणवश किसी को यह शिक्षा बचपन में या युवावस्था में भी न दी गयी हो तो इसका आरम्भ किसी भी उम्र में किया जा सकता है और फिर सारे जीवन इसका अभ्यास किया जा सकता है। परन्तु जितनी ही देर से हम आरम्भ करेंगे उतना ही अधिक हमें बुरी आदतों का सामना करने, उन्हें सुधारने, जड़ता-कठोरता को दूर कर कोमलता-नमनीयता लाने और विकृत अंगों को दुरुस्त करने के लिए तैयार रहना होगा। इस प्रारम्भिक तैयारी के काम के लिए बहुत अधिक धैर्य और लगन की आवश्यकता होगी और तब कहीं वह अवस्था आयेगी जब हम शरीर के आकार और उसकी गतियों में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए किसी क्रियात्मक कार्यक्रम को आरम्भ कर सकेंगे। परन्तु जिस सौन्दर्य को प्राप्त करना है उसके जीवन्त आदर्श को अगर तुम अपने अन्दर धारण करो तो अपने द्वारा निर्धारित लक्ष्य पर पहुँचना तुम्हारे लिए सुनिश्चित है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १६-२०

युवा तथा भविष्य

भविष्य युवाओं का है। अब युवा तथा नूतन जगत् विकास की प्रक्रिया से गुज़र रहे हैं। युवाओं को ही नूतन भविष्य की रचना करनी है। लेकिन साथ ही हम सत्य, साहस, न्याय, उच्च अभीप्सा और सरल-सीधी उपलब्धि के पथ का निर्माण करना चाहते हैं। भीरु, आत्म-अभिमानी, बकवादी के लिए इस भावी आन्दोलन में कोई स्थान नहीं जो आरम्भ में आगे चल पड़ता है लेकिन बाद में अपने साथियों को छोड़ बैठता है। साहसी, स्पष्टवादी, सरल-हृदय, शूरवीर और अभीप्सा करने वाले युवाओं की ही आवश्यकता है और उन्हीं पर भावी राष्ट्र के निर्माण की ज़िम्मेवारी रखी जा सकती है।

CWSA खण्ड ८, पृ. १६८ ***श्रीअरविन्द***

वीरता है—हमेशा वही करना जो सबसे सुन्दर और सबसे उदात्त है।
और हमेशा अपनी उच्चतम चेतना से कार्य करना। श्रीमाँ

विद्यार्थी

उपयोगितावाद नामक रोग

मधुर माँ, हमारे 'शिक्षाकेन्द्र' के विद्यार्थियों को 'डिप्लोमा' या 'सर्टिफ़िकेट' क्यों नहीं दिये जाते?

लगभग एक शताब्दी से मानवजाति एक रोग से पीड़ित है जो अधिकाधिक बढ़ता ही दीख रहा है और आज वह अपनी चरम अवस्था पर आ पहुँचा है, इसे हम "उपयोगितावाद" कहते हैं। ऐसा लगता है कि चीज़ों और मनुष्यों को, परिस्थितियों और कर्मों को अनन्य रूप से उसी एक दृष्टिकोण से विचारा और सराहा जाता है। जिसकी कोई उपयोगिता नहीं उसका कोई मोल नहीं। यह ठीक है कि जो उपयोगी है वह निरुपयोगी से बेहतर है। लेकिन पहले यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य किसे उपयोगी मानता है—उपयोगी किसके लिए, किसके प्रति, किसलिए?

क्योंकि, वे जातियाँ जो अपने को सभ्य समझती हैं उसी चीज़ को उपयोगी कहती हैं जो धन ला सके, धन कमा सके या पैदा कर सके। सबका निर्णय और मूल्यांकन उसी एक आर्थिक दृष्टिकोण से किया जाता है। मैं इसे ही उपयोगितावाद कहती हूँ। और यह रोग बहुत ही संक्रामक है, क्योंकि बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहते।

उस उम्र में जब कि सुन्दरता, भव्यता और पूर्णता के सपने सँजोये जाने चाहियें, ऐसे सपने जो शायद सामान्य अर्थों से कहीं अधिक उदात्त होते हैं, पर जो निश्चय ही कुण्ठित सामान्य बुद्धि से उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसे के सपने देखते हैं और उसे कमाने के साधनों के बारे में चिन्तातुर रहते हैं।

इसी तरह जब वे अपनी पढ़ाई के बारे में सोचते हैं तो उस सब पर विचार करते हैं जो आगे चल कर उनके लिए उपयोगी हो सके ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

और परीक्षाओं में सफल होने के लिए तैयारी करना उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि 'डिप्लोमा', 'सर्टिफ़िकेट' और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं और इनकी सहायता से वे धन भी ख़ूब कमा सकते हैं।

उनके लिए पढ़ाई का न कोई और उद्देश्य है, न महत्त्व।

ज्ञान के लिए सीखना, प्रकृति और जीवन के रहस्यों को जानने के लिए पढ़ना, चेतना को विकसित करने के लिए अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पाने के लिए स्वयं को अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञानताओं को अतिक्रम करने के लिए पढ़ना, जीवन में अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्य की ओर बढ़ने के लिए अपने-आपको तैयार करना... यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल-कल्पना ही समझते हैं। बस, एक ही चीज़ महत्त्वपूर्ण है—व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिए अपने को तैयार करना।

आश्रम का यह 'शिक्षाकेन्द्र' उन बच्चों के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है जो इस रोग के शिकार हैं। और उनके आगे इस बात को अच्छी तरह प्रमाणित कर देने के लिए ही हम उन्हें किसी प्रकार की परीक्षा के लिए या किसी सरकारी प्रतियोगिता के लिए तैयार नहीं करते और न ही उन्हें कोई 'डिप्लोमा' या उपाधि देते हैं जो बाहरी दुनिया में उनके काम आ सके।

हम यहाँ केवल उन्हीं बच्चों को चाहते हैं जो एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवन की अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णता की पिपासा है, जो एक पूर्णतर सच्चे भविष्य की ओर आतुरता से निहारते हैं।

बाक़ी सबके लिए दुनिया काफ़ी बड़ी है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३८१-८२

खेल-कूद के पहले की एकाग्रता

मधुर माँ,

हम रोज़, खेल से पहले और बाद में एक मिनट के लिए मन को एकाग्र करते हैं। इस एकाग्रता के समय हमें क्या करने का प्रयास करना चाहिये?

पहले, तुम जो कुछ करने जा रहे हो उसे भगवान् को अर्पित करो, ताकि वह समर्पण की भावना से किया जा सके।

बाद में, भगवान् से प्रार्थना करो कि तुम्हारे अन्दर प्रगति करने के संकल्प की वृद्धि हो ताकि तुम उनकी सेवा के अधिकाधिक योग्य यन्त्र

बन सको।

तुम शुरू करने से पहले नीरवता में आत्म-निवेदन भी कर सकते हो।

और अन्त में, भगवान् के प्रति चुपचाप कृतज्ञता अर्पित करो।

मेरा मतलब है कि यह गति *हृदय* से, दिमाग़ में किसी शब्द के बिना की जाये।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३८५

सभी कठिनाइयों का कारण

मानव जीवन में सभी कठिनाइयों, सभी विसंगतियों, सभी नैतिक कष्टों का कारण होता है हर एक के अन्दर उपस्थित अहंकार और उसके साथ उसकी कामनाएँ, उसकी रुचियाँ और अरुचियाँ। निःस्वार्थ काम में भी, जिसमें दूसरों की सहायता करनी होती है, जब तक तुम अहं और उसकी माँगों पर विजय पाना न सीख लो, जब तक तुम उसे चुपचाप और शान्त रह कर एक कोने में बैठने के लिए बाधित न कर सको, अहंकार हर उस चीज़ के विरुद्ध प्रतिक्रिया करता है जो उसे पसन्द नहीं आती, एक आन्तरिक तूफ़ान खड़ा कर देता है जो सतह पर आता है और सारा काम बिगाड़ देता है।

अहंकार पर विजय पाने का यह काम लम्बा, धीमा और कठिन है; यह सतत चौकसी और निरन्तर प्रयास की माँग करता है। यह प्रयास कुछ लोगों के लिए ज़्यादा सरल होता है और कुछ लोगों के लिए ज़्यादा कठिन।

हम यहाँ आश्रम में यह काम मिल कर श्रीअरविन्द के ज्ञान और उनकी शक्ति की सहायता से करने के लिए हैं; हम इस कोशिश में हैं कि एक ऐसा संघ बनायें जो ज़्यादा सामञ्जस्यपूर्ण, ज़्यादा ऐक्यपूर्ण और परिणामस्वरूप, जीवन में ज़्यादा सार्थक हो।

जब तक मैं भौतिक रूप से तुम सबके साथ रहती थी, मेरी उपस्थिति ही तुम्हें अहंकार पर यह प्रभुता पाने में सहायता देती थी और इसलिए मुझे व्यक्तिगत रूप से इस विषय में प्रायः बोलने की ज़रूरत न होती थी।

परन्तु अब यह प्रयास हर व्यक्ति के जीवन का आधार होना चाहिये, विशेष रूप से तुममें से उन लोगों के लिए जो ज़िम्मेदार पदों पर हैं और जिन्हें औरों की देखभाल करनी होती है। नेताओं को हमेशा उदाहरण

रखना चाहिये, जो लोग उनकी देख-रेख में हैं उनसे वे जिन गुणों की माँग करते हैं स्वयं उन्हें उन गुणों को आचरण में लाना चाहिये; उन्हें समझदार, धीर, सहनशील, सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिये, उनमें ऊष्मा और मैत्रीपूर्ण सद्भावना होनी चाहिये, लेकिन अपने लिए मित्र जुटाने की अहंकारपूर्ण वृत्ति से नहीं, बल्कि उदारता के द्वारा, ताकि वे औरों को समझ सकें और उनकी सहायता कर सकें।

सच्चा नेता होने के लिए अपने-आपको, अपनी रुचियों और पसन्दों को भूल जाना अनिवार्य है।

मैं अब तुमसे इसी की माँग कर रही हूँ ताकि तुम अपनी ज़िम्मेदारियों को उस तरह निभा सको जैसे निभाना चाहिये। और तब तुम अनुभव करोगी कि जहाँ तुम अव्यवस्था और अनैक्य देखती थीं, वे ग़ायब हो गये हैं और उनकी जगह सामञ्जस्य, शान्ति और आनन्द ने ले ली है।

तुम जानती हो कि मैं तुमसे प्रेम करती हूँ और मैं तुम्हें सहारा देने, तुम्हारी सहायता करने और रास्ता दिखाने के लिए हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।

आशीर्वाद।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. ३८५-८६

छुट्टियाँ बिताना

मधुर माँ,

कुछ बच्चे मुझसे पूछते हैं कि यहाँ छुट्टियाँ बिताने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है।

यह कोई रोचक काम करने का, कुछ नया सीखने का या अपने स्वभाव या पढ़ाई में किसी कमी को सुधारने-सँवारने का सबसे अच्छा अवसर है।

यह किसी काम का स्वतन्त्र चुनाव करने का और इस तरह अपनी सत्ता की सच्ची क्षमताओं को खोजने का सबसे अच्छा मौक़ा है।

आशीर्वाद। '**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. ३८६-८७

मेरे बच्चो, मैं चाहती हूँ कि तुम्हारे लिए जीवन सुखद हो,
और एक दिन तुम 'ज्योति' और 'सत्य' में जन्म लो। ***श्रीमाँ***

उदाहरण के द्वारा सिखाना

मधुर माँ,

क्या यह आदर्श उन्हें सिखाया जा सकता है जो इसे नहीं समझते, और इसे उन्हें कैसे सिखाया जाये? क्या हम, शिक्षक और प्रशिक्षक, इस कठिन कार्य को करने के योग्य हैं?

हम जो सिखाना चाहते हैं वह सिर्फ़ एक *मानसिक आदर्श* नहीं है, वह है एक नये जीवन की परिकल्पना और चेतना की एक *उपलब्धि*। सभी के लिए यह उपलब्धि नयी है, और इसे दूसरे को सिखाने का एक ही सच्चा तरीक़ा है : इस नयी चेतना के अनुसार स्वयं जीना और इसके द्वारा अपने-आपको रूपान्तरित होने देना। उदाहरण से बड़ी कोई और सीख नहीं है। दूसरों से कहना : "स्वार्थी मत बनो," कुछ अर्थ नहीं रखता, पर यदि कोई सब प्रकार के स्वार्थ से मुक्त हो तो वह औरों के लिए शानदार उदाहरण बन जाता है; और जो 'परम सत्य' के अनुसार कार्य करने की सच्ची अभीप्सा करता है, वह अपने आस-पास रहने वालों पर एक संक्रामक-सा प्रभाव डालता है। अतएव उन सबका, जो प्रशिक्षक या अध्यापक हैं, पहला कर्तव्य है, स्वयं उन गुणों का उदाहरण बनना जो वे दूसरों को सिखाना चाहते हैं।

और यदि, इन शिक्षकों और प्रशिक्षकों में कुछ ऐसे हैं जो इस पद के योग्य नहीं हैं, क्योंकि वे अपने चरित्र के द्वारा बुरे उदाहरण रखते हैं, तो उनका पहला कर्तव्य है, अपने चरित्र और अपनी क्रिया को बदल कर योग्य बनना; दूसरा कोई उपाय नहीं है!

आशीर्वाद।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३८८

मधुर माँ,

जो विद्यार्थी यह जानते हैं कि उन्हें अपनी शिक्षा समाप्त कर लेने के बाद यहाँ से चले जाना है, क्या उन्हें समय-समय पर बाहर नहीं जाते रहना चाहिये, ताकि बाद में वे स्वयं को साधारण जीवन के अनुरूप ढाल सकें?

साधारण जीवन को अपनाने में कोई कठिनाई नहीं होती, इस ग़ुलामी के सामने तो लोग जन्म से ही घुटने टेके हुए हैं, सभी इसे परम्परागत रोग की तरह ढोते रहते हैं। जिनका जन्म ही मुक्त होने के लिए हुआ है उन्हें भी इस विरासत से सच्ची मुक्ति पाने के लिए सतत और कठिन संघर्ष करना होगा।

आशीर्वाद।

*

मधुर माँ,

जो छात्र अपनी शिक्षा पूरी करके यहाँ से बाहर चले जायेंगे उनसे आप क्या आशा करती हैं? निश्चय ही उनमें और साधारण लोगों में काफ़ी अन्तर होना चाहिये। क्या होगा वह अन्तर?

प्रायः, इनमें से अधिकतर जब अपने-आपको सामान्य जीवन में पाते हैं तो इस अन्तर को समझ लेते हैं और वे जो कुछ खो बैठे हैं उसके लिए पछताते हैं। उनमें से कम ही लोगों में इतना साहस होता है कि वे साधारण परिस्थितियों से प्राप्त सुविधाओं से मुँह मोड़ सकें, पर दूसरे भी जीवन का सामना उसी अचेतनता से नहीं करते जैसे कि वे लोग करते हैं जिनका आश्रम से कभी सम्पर्क नहीं रहा।

हम जो काम कर रहे हैं वह किसी बदले की आशा से नहीं, बल्कि मानवता की प्रगति में सहायता पहुँचाने के लिए है।

आशीर्वाद।

अनुशासन थोपना

मधुर माँ,

आपके विचार में किस हद तक छात्रों पर अनुशासन थोपना शिक्षक या प्रशिक्षक का कर्तव्य है?

स्पष्ट ही है, छात्रों को अनियमितता, अशिष्टता या लापरवाही से रोकना अनिवार्य है; दुर्भावनापूर्ण और अहितकर शरारतें भी सहन नहीं की जा सकतीं।

पर एक सामान्य और अपवादरहित नियम यह है कि शिक्षकों को,

विशेषकर शारीरिक शिक्षा देने वाले प्रशिक्षकों को सदा उन गुणों का जीवन्त उदाहरण बनना चाहिये जिनकी वे छात्रों से माँग करते हैं; अनुशासन, नियमितता, शिष्ट व्यवहार, साहस, अध्यवसाय, प्रयास में धीरता—यह सब शब्दों की अपेक्षा उदाहरण से अधिक अच्छी तरह सीखे जाते हैं। और यह तो पक्की बात है: बच्चों के सामने वह कभी मत करो जिसके लिए तुम उन्हें मना करते हो।

बाक़ी के लिए, हर स्थिति का अपना समाधान होता है, कौशल और विवेक से काम लेना चाहिये।

इसीलिए शिक्षक या प्रशिक्षक बनना अनुशासनों में सबसे अच्छा अनुशासन है, यदि कोई उसका पालन करना जाने।

आशीर्वाद।

*

बच्चों को यह समझ कर शरारत छोड़नी चाहिये कि शरारती होना शर्म की बात है, न कि सज़ा के डर से।

पहली अवस्था में, वह सचमुच उन्नति करता है।

दूसरी में, वह मानव चेतना से एक पग और नीचे गिर जाता है, क्योंकि भय चेतना का अधःपतन है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३९१-९३

शिक्षा का लक्ष्य

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को जीवन में और समाज में सफलता के लिए तैयार करना नहीं है, बल्कि उसकी पूर्णता को उसके चरम बिन्दु तक बढ़ाना है।

*

सफलता को लक्ष्य न बनाओ। हमारा लक्ष्य है पूर्णता। याद रखो तुम **नये जगत्** की देहली पर हो, उसके जन्म में भाग ले रहे हो और उसके सृजन में सहायक हो। रूपान्तर से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। इससे अधिक मूल्यवान् कोई अभिरुचि नहीं है।

*

साधारण तौर पर शिक्षा, संस्कृति इन्द्रियों की सुरुचिपूर्णता हैं, गँवारू

सहज वृत्ति, कामना और आवेग की गतियों का मार्जन करने के साधन। उन्हें मिटा देना उनका मार्जन नहीं है; इसकी जगह उन्हें सुसंस्कृत बनाना, बौद्धिक और सुरुचिपूर्ण बनाना चाहिये। उनके परिमार्जन का यही सबसे विश्वसनीय तरीक़ा है। चेतना की प्रगति और विकास की दृष्टि से उनको अधिकाधिक विकास प्रदान करना मनुष्य की शिक्षा और संस्कृति का भाग है, ताकि मनुष्य सामञ्जस्य के भाव और प्रत्यक्ष दर्शन की यथार्थता पा ले।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. १३२

हमें वह वीर योद्धा बना जो बनने के लिए हम अभीप्सा करते हैं। वर दे कि हम डटे रहने का प्रयास करने वाले भूत के विरुद्ध, सफलतापूर्वक उस भविष्य का युद्ध लड़ सकें जो अभी जन्म लेने को है, ताकि नयी चीज़ें अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करने-योग्य बन सकें।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. १२२

तुम जो युवा हो, तुम ही देश की आशा हो। इस प्रत्याशा के योग्य बनने के लिए तैयारी करो।

आशीर्वाद।

*

एक चीज के बारे में तुम निश्चित हो सकते हो—*तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है*। तुम वही व्यक्ति बनोगे जो तुम *बनना चाहते हो*। तुम्हारा आदर्श और तुम्हारी अभीप्सा जितने ऊँचे होंगे तुम्हारी सिद्धि भी उतनी ही ऊँची होगी। लेकिन तुम्हें दृढ़ निश्चय रखना चाहिये और अपने जीवन के सच्चे लक्ष्य को कभी न भूलना चाहिये।

युवा होने का अर्थ है—भविष्य में जीना।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १२, पृ. १३३

हमेशा युवा बने रहो,
पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कभी बन्द मत करो।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १५, पृ. १९३

यौवन

यौवन प्रगति करने का सामर्थ्य है

यौवन इस बात पर निर्भर नहीं करता कि हम उम्र में कितने छोटे हैं, बल्कि इस पर कि हमारे अन्दर विकसित होने और प्रगति करने की क्षमता कितनी है। विकसित होने का अर्थ है, अपनी अन्तर्निहित शक्तियाँ, अपनी क्षमताएँ बढ़ाना; प्रगति करने का अर्थ है, अब तक अधिकृत योग्यताओं को बिना रुके निरन्तर पूर्णता की ओर ले जाना। वृद्धावस्था आयु बड़ी हो जाने से नहीं आती बल्कि विकसित होने और प्रगति करने की अयोग्यता के कारण अथवा विकसित होना और प्रगति करना अस्वीकार कर देने के कारण आती है। मैंने बीस वर्ष की आयु के वृद्ध और सत्तर वर्ष के युवक देखे हैं। ज्यों ही मनुष्य जीवन में स्थित हो जाने और पुराने प्रयासों की कमाई खाने की इच्छा करता है, ज्यों ही मनुष्य यह सोचने लगता है कि उसे जो कुछ करना था वह उसे कर चुका और जो कुछ उसे प्राप्त करना था वह प्राप्त कर चुका, संक्षेप में, ज्यों ही मनुष्य प्रगति करना, पूर्णता के मार्ग पर अग्रसर होना बन्द कर देता है, त्यों ही उसका पीछे हटना, बूढ़ा होना निश्चित हो जाता है।

शरीर के विषय में भी मनुष्य यह जान सकता है कि उसकी क्षमताओं की वृद्धि और उसके विकास की लगभग कोई सीमा नहीं, बशर्ते कि मनुष्य इसकी असली पद्धति और सच्चे कारण ढूँढ़ निकाले। यहाँ हम जो बहुत-से परीक्षण करना चाहते हैं उनमें से एक यह शारीरिक विकास भी है और मानवजाति की सामूहिक धारणा को निर्मूल कर हम संसार को यह दिखा देना चाहते हैं कि मनुष्य में कल्पनातीत सम्भावनाएँ निहित हैं।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २७७

शक्ति का अक्षय भण्डार

किसी खिलाड़ी को यौगिक साधना से जो सबसे बड़ी सहायता मिल सकती है वह यह है कि साधना उसे यह सिखा सकती है कि विश्व-ऊर्जा के अक्षय स्रोत से शक्ति आहरण कर कैसे अपनी शक्ति को नया और ताज़ा बनाया जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान ने पोषण-कला में बहुत उन्नति की है, अभी तक शक्ति पाने के लिए यही सबसे अधिक जाना-माना साधन है। लेकिन यह प्रक्रिया अपने अच्छे-से-अच्छे रूप में भी अनिश्चित है और नाना प्रकार की सीमाओं से घिरी है। यहाँ हम इस विषय को नहीं ले रहे, क्योंकि इस विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। पर यह स्पष्ट है कि जब तक मनुष्य और संसार अपनी वर्तमान अवस्था में हैं तब तक भोजन अनिवार्य है। योग-विज्ञान शक्ति प्राप्त करने के अन्य साधनों को जानता है, और यहाँ हम दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधनों का ही उल्लेख करेंगे।

पहला है, जड़ और पार्थिव जगत् में एकत्रित शक्तियों के साथ नाता जोड़ना और उनके अक्षय भण्डार से आज़ादी के साथ आहरण कर सकना। ये भौतिक शक्तियाँ अन्धकाराच्छन्न और अर्ध-अचेतन होती हैं; ये मनुष्य के अन्दर पशुता बढ़ाती हैं, लेकिन साथ-ही-साथ, ये मानव शरीर और भौतिक प्रकृति के बीच एक सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित करती हैं। जो इन शक्तियों को लेना और इनका उपयोग करना जानते हैं वे प्रायः जीवन में सफलता पाते हैं और जो कुछ हाथ में लेते हैं उसमें सफल होते हैं। पर फिर भी वे बहुत हद तक जीवन की परिस्थितियों और शारीरिक स्वास्थ्य की अवस्था पर आश्रित रहते हैं। उनमें जो सामञ्जस्य पैदा होता है वह आक्रमणों से सुरक्षित नहीं होता; जब परिस्थितियाँ उलटी हो जायें तो वह ग़ायब हो जाता है। बालक बिना नापे-तोले, मस्ती में, खुल कर इधर-उधर हाथ-पैर मारता हुआ शक्ति फेंकता और भौतिक 'प्रकृति' से शक्ति पाता रहता है। लेकिन अधिकतर मनुष्यों में, जैसे-जैसे वे बड़े होते जाते हैं, यह क्षमता चेतना में मानसिक क्रियाओं की प्रधानता हो जाने के परिणाम-स्वरूप जीवन की चिन्ताओं के कारण कुन्द-सी हो जाती है।

फिर भी, शक्ति का एक स्रोत है। एक बार उसका पता लग जाये तो फिर जीवन की भौतिक अवस्थाएँ चाहे जैसी क्यों न हों, चाहे जैसी परिस्थितियाँ क्यों न आ जायें, वह स्रोत कभी सूख नहीं सकता। कहा जा सकता है कि यह आध्यात्मिक शक्ति है जो नीचे से, निश्चेतना की गहराइयों में से नहीं, बल्कि ऊपर से, मनुष्यों और जगत् के परम स्रोत से, अतिचेतना के शाश्वत और सर्वशक्तिमान् वैभवों से आती है। वह हर जगह, हमारे चारों ओर मौजूद है और हर चीज़ में व्याप्त है; और उसके साथ नाता जोड़ने

के लिए और उसे पाने के लिए इतना काफ़ी है कि उसके लिए सच्चाई से अभीप्सा की जाये, अपने-आपको पूरे श्रद्धा-विश्वास के साथ उसके प्रति खोला जाये, अपनी चेतना को विशाल बनाया जाये और विश्व-'चेतना' के साथ एक हुआ जाये।

शुरू में, यह चीज़ असम्भव नहीं तो कठिन ज़रूर प्रतीत हो सकती है। लेकिन अगर तथ्यों को ज़रा ज़्यादा नज़दीक से देखा जाये, तो मालूम होगा कि यह चीज़ इतनी परायी नहीं है, सामान्य रूप से विकसित मानव चेतना से इतनी दूर नहीं है। वास्तव में, ऐसे लोग बहुत कम होंगे जिन्होंने अपने जीवन में, कम-से-कम एक बार, यह अनुभव नहीं किया कि मानों वे अपने-आपसे परे उठा लिये गये हैं, एक अप्रत्याशित और ऐसी असाधारण शक्ति से भर गये हैं जो उन्हें, उस समय के लिए, सब कुछ करने की सामर्थ्य देती है; ऐसे क्षणों में कोई भी चीज़ बहुत कठिन नहीं मालूम होती और "असम्भव" शब्द अपना अर्थ खो बैठता है।

यह अनुभव, चाहे कितना भी क्षणिक क्यों न हो, हमें उस उच्चतर शक्ति के सम्पर्क की एक झाँकी दे देता है जिसे योग-साधना प्राप्त कर सकती और बनाये रख सकती है।

इस सम्पर्क को पाने की विधि यहाँ बड़ी मुश्किल से ही बतायी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, यह एक व्यक्तिगत चीज़ है, हर एक के लिए अपना तरीक़ा है जो हर व्यक्ति को वहीं आकर पकड़ता है जहाँ वह खड़ा हो, अपने-आपको उसकी निजी ज़रूरतों के अनुकूल बनाता है और उसे एक क़दम आगे बढ़ने में सहायता देता है। रास्ता लम्बा है और कभी-कभी गति धीमी होती है, लेकिन परिणाम कष्ट उठाने-लायक़ है। हम सहज ही इस शक्ति के परिणामों की कल्पना कर सकते हैं जो हर परिस्थिति में, और जब चाहे तब, शक्ति के उस असीम भण्डार से शक्ति ग्रहण करती है जो अपनी भास्वर पवित्रता से युक्त सर्वसमर्थ है। थकान, क्लान्ति, रोग, जरा और मृत्यु तक रास्ते की बाधाएँ भर रह जाते हैं, उन्हें चिरजीवी संकल्प के द्वारा निश्चित रूप से पार किया जा सकता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २८१-८३

प्रगति करने के लिए तुम्हें अध्यवसाय के साथ काम करना चाहिये।

रूपान्तर तथा शरीर

यह बिलकुल सच है कि सम्पूर्ण सत्ता का समर्पण और परिणामस्वरूप उसका रूपान्तरण ही योग का लक्ष्य है—शरीर को इससे बाहर नहीं रखा गया है, लेकिन साथ ही प्रयास का यह भाव सबसे अधिक कठिन तथा सन्दिग्ध है—शेष, यद्यपि सरल नहीं है, फिर भी सम्पन्न करने के लिए अपेक्षाकृत कम कठिन है। व्यक्ति को शरीर पर चेतना के आन्तरिक नियन्त्रण से शुरुआत करनी चाहिये, एक ऐसी शक्ति हो जो शरीर द्वारा चेतना की इच्छा तथा जो शक्ति उसमें सञ्चारित हो रही है उसकी आज्ञा का अधिकाधिक पालन करवाये। अन्त में जैसे-जैसे उच्च से उच्चतर शक्ति अवतरित होती है और शरीर की नमनीयता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे रूपान्तर सम्भव होता जाता है।

जब तक उन दूसरी चीज़ों को बदला नहीं गया हो जिन्हें बदलना कहीं ज़्यादा आसान होता है—हालाँकि निस्सन्देह, यह भी सच है कि कुछ भी आसान नहीं है—तब तक शरीर के रूपान्तर की बात सोचना एकदम व्यर्थ है। पहले अन्दर बदलना होगा तभी बाह्यतम भाग अनुसरण कर सकता है। अतः, इतनी तल्लीनता क्यों? हाँ, अगर तुम यह सोचो कि बाक़ी सब कुछ पूर्ण है... यह तो वास्तव में आश्चर्यकर दावा करना होगा। शरीर के साथ सबसे पहले करना यह चाहिये कि उसे 'शक्ति' की ओर उद्‌घाटित कर दो ताकि तुम बीमारी तथा थकान का सामना करने के लिए बल तथा शक्ति पा लो—जब ये चीज़ें आयें तो तुम्हारे अन्दर उनके प्रति प्रतिक्रिया करने, उन्हें निकाल बाहर फेंकने की शक्ति होनी चाहिये और तुम्हें शरीर में शक्ति का एक निरन्तर प्रवाह बनाये रखना चाहिये। अगर यह कर लिया जाये तो बाक़ी शारीरिक बदलाव अपने उचित समय पर हो जायेंगे और इसके लिए व्यक्ति प्रतीक्षारत रह सकता है।

अतिमानसिक पूर्णता का अर्थ है कि शरीर सचेतन बन जाये, चेतना से सराबोर हो जाये और यह कि चूँकि वह 'सत्य'-चेतना है, अतः उसके समस्त कर्म, समस्त गतियाँ इत्यादि इस चेतना की शक्ति द्वारा उसके अन्दर सुसामञ्जस्यमय, उज्ज्वल, उचित तथा सत्य बन जायें—उसमें अज्ञान या अव्यवस्था का हलका भी पुट न रहे।

CWSA खण्ड २८, पृ. ३०५

प्रगति यौवन है

सुखी तथा सफल जीवन के लिए सच्चाई, नम्रता, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझने वाली प्यास ज़रूरी हैं। सबसे बढ़ कर यह कि तुम्हें विश्वास हो कि प्रगति की सम्भावना असीम है। प्रगति यौवन है; तुम सौ वर्ष की उम्र में भी युवक हो सकते हो।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४८२-८३

यन्त्रों को प्रशिक्षित करो

हम यहाँ पर उसी को दोहराने के लिए नहीं हैं जिसे और लोग कर चुके हैं, बल्कि हम यहाँ एक नयी चेतना और नये जीवन के प्रस्फुटन के लिए अपने-आपको तैयार करने के लिए हैं। इसीलिए मैं तुमसे, विद्यार्थियों से, बात कर रही हूँ, अर्थात्, उन सबसे जो सीखना चाहते हैं, अधिकाधिक सीखना चाहते हैं और ज़्यादा अच्छा सीखना चाहते हैं, ताकि एक दिन तुम नयी शक्ति के प्रति खुल सको और भौतिक स्तर पर उसकी अभिव्यक्ति को सम्भव बना सको।

क्योंकि यही हमारा कार्यक्रम है और हमें इसे नहीं भूलना चाहिये। अगर तुम इसका सच्चा कारण जानना चाहो कि तुम यहाँ क्यों हो तो तुम्हें याद रखना चाहिये कि हमारा लक्ष्य है संसार में भागवत संकल्प को अभिव्यक्त करने वाले, यथासम्भव, अधिक-से-अधिक पूर्ण यन्त्र बनना। और अगर यन्त्रों को पूर्ण बनना है तो तुम्हें उन्हें साधना होगा, शिक्षण और प्रशिक्षण देना होगा। तुम उनको बंजर ज़मीन या अनगढ़ पत्थर की तरह नहीं छोड़ सकते। कलापूर्ण ढंग से तराशे जाने पर ही हीरे का पूरा सौन्दर्य निखर कर आता है। तुम्हारे बारे में भी यही बात है। यदि तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी भौतिक सत्ता अतिमानसिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाला पूर्ण यन्त्र बने तो तुम्हें उसे सुधारना, सँवारना होगा, आकार देना होगा, शुद्ध करना होगा, उसमें जो कमी हो उसे पूरा करना होगा और जो कुछ उसमें पहले से ही है उसे पूर्ण बनाना होगा। इसीलिए तुम कक्षा में आते हो, मेरे बच्चो, चाहे तुम बड़े हो या छोटे, क्योंकि व्यक्ति हर अवस्था में सीख सकता है—और इसीलिए तुम्हें अपनी कक्षाओं में जाना होता है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ८०-८१

प्रगति को चुनो

कभी-कभी जब तुम कुछ अनमने-से होते हो तो तुम कहते हो: "यह कक्षा कितनी उबाऊ होगी!" हाँ, हो सकता है कि कक्षा एक ऐसा अध्यापक लेता है जो तुम्हारा मनोरञ्जन करना नहीं जानता। वह एक अच्छा अध्यापक हो सकता है, फिर भी उसे मनबहलाव करना न आता हो, क्योंकि यह हमेशा आसान नहीं होता। ऐसे दिन होते हैं जब व्यक्ति को मनोरञ्जन करने की इच्छा नहीं होती। तुम्हारे लिए और उसके लिए भी ऐसे दिन होते हैं जब तुम विद्यालय में रहने की जगह कहीं और रहना ज़्यादा पसन्द करते हो, फिर भी तुम कक्षा में जाते हो, तुम जाते हो क्योंकि जाना चाहिये, क्योंकि अगर तुम अपनी सब सनकों के अनुसार चलने लगो तो कभी अपने ऊपर अधिकार न पा सकोगे; तुम्हारी सनकें ही तुम्हें अपने वश में रखेंगी। इसलिए तुम कक्षा में जाते हो। परन्तु यह सोचते हुए न जाओ: "ओह, कक्षा कितनी अरुचिकर और उबाऊ होगी," उसकी जगह यूँ कहो: "जीवन में एक क्षण भी ऐसा नहीं होता, एक परिस्थिति भी ऐसी नहीं होती जो प्रगति का अवसर न हो। तो आज मैं कौन-सी प्रगति करने वाला हूँ? आज मैं जिस कक्षा में जा रहा हूँ, वहाँ जो विषय पढ़ाया जायेगा उसमें मुझे रस नहीं है। लेकिन शायद मेरे अन्दर ही कुछ कमी है; शायद, मेरे मस्तिष्क में कुछ कोषाणुओं की कमी है। इसीलिए मुझे इस विषय में रुचि नहीं होती। अगर बात ऐसी है तो मैं कोशिश करूँगा, अच्छी तरह सुनूँगा, एकाग्र रहूँगा, और सबसे बढ़ कर, अपने दिमाग़ से लक्ष्यहीनता को, सतही उथलेपन को निकाल बाहर करूँगा। यह सतही उथलापन ही इस बात के लिए ज़िम्मेदार है कि जब कोई बात मेरी पकड़ में नहीं आती तो मैं ऊब उठता हूँ। मैं इसलिए ऊब उठता हूँ, क्योंकि मैं समझने का कोई प्रयास नहीं करता, मेरे अन्दर प्रगति करने के लिए यह संकल्प नहीं है।" जब हम प्रगति नहीं करते तब सभी को ऊब आती है, चाहे वह जवान हो या बूढ़ा; क्योंकि हम यहाँ धरती पर प्रगति करने के लिए हैं। अगर जीवन प्रगति न करता तो वह कितना थकाने वाला हो जाता! जीवन एकरस है, बहुधा सुखकर नहीं होता। वह सुन्दर होने से बहुत दूर है। लेकिन अगर हम उसे प्रगति का क्षेत्र मान लें तो हर चीज़ बदल जाती है, हर चीज़ रुचिकर बन जाती है और ऊब के लिए कोई जगह ही नहीं रहती। अगली बार जब

तुम्हें अपना अध्यापक उबाने वाला लगे तो कुछ न करने में अपना समय बरबाद करने की जगह, यह समझने की कोशिश करो कि यह ऐसा क्यों है। अगर तुम्हारे अन्दर अवलोकन की क्षमता है और अगर तुम समझने का प्रयास करो तो तुम शीघ्र ही देखोगे कि कैसा चमत्कार हो गया, अब तुम्हें ऊब नहीं आ रही।

ऊब का इलाज

यह इलाज प्रायः सभी अवस्थाओं में अच्छा होता है। कभी-कभी किन्हीं विशेष प्रकार की परिस्थितियों में तुम्हें हर चीज़ नीरस, उबाऊ और मूर्खताभरी लगती है। इसका अर्थ है कि स्वयं तुम भी वैसे ही उबाऊ हो जैसी तुम्हारी परिस्थितियाँ, यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि तुम प्रगतिशील अवस्था में नहीं हो। तुम्हारे ऊपर से ऊब की एक लहर दौड़ गयी है। और इससे बढ़ कर जीवन के उद्देश्य का विरोधी और कुछ नहीं है। ऐसे समय तुम प्रयास करके अपने-आपसे पूछ सकते हो: "यह ऊब इस बात का प्रमाण है कि मुझे कुछ सीखना है, अपने अन्दर कोई प्रगति करनी है, किसी तमस् को जीतना है, किसी दुर्बलता पर विजय पानी है।" ऊब चेतना का नीरस हो जाना है; अगर तुम अपने अन्दर ही उपचार ढूँढ़ो तो उसे तुरत ग़ायब होते देखोगे। अधिकतर लोग ऊब की अवस्था में अपनी चेतना में एक क़दम ऊपर उठने का प्रयास करने की जगह एक क़दम नीचे आ जाते हैं। बल्कि जिस स्तर पर वे थे उससे भी नीचे उतर जाते हैं और अधिक-से-अधिक मूर्खताभरी चीज़ें करते हैं। वे अपना मन बहलाने की आशा से एकदम भद्दी चीज़ें करने लगते हैं। इसी तरह लोग पीना शुरू करते हैं, अपना स्वास्थ्य ख़राब कर लेते हैं और अपने मस्तिष्क को मृतप्राय बना देते हैं। अगर वे गिरने की जगह ऊपर उठे होते तो इस अवसर का लाभ उठा कर प्रगति कर लेते।

वास्तव में, यह बात उन सब परिस्थितियों में समान रूप से सच्ची है जब जीवन तुम्हें कोई करारी चोट पहुँचाता है, जिस चोट को मनुष्य "दुर्भाग्य" कहते हैं। वे सबसे पहली चीज़ जो करना चाहते हैं वह है भुला देना, मानों वैसे ही वे बहुत जल्दी नहीं भूल जाते! और भूलने के लिए वे सब तरह की चीज़ें करते हैं। जब चीज़ बहुत कष्टदायक हो उठे तो

वे मन बहलाने की कोशिश करते हैं, जिसे वे मनबहलाव कहते हैं, यानी, मूर्खताभरी चीज़ें करते हैं और अपनी चेतना को ऊपर उठाने की जगह, और भी नीचे घसीटते हैं। अगर तुम्हें बहुत कष्टप्रद अनुभव हो रहा हो तो कभी अपने-आपको सुन्न करने की, भूल जाने की, निश्चेतना में उतरने की कोशिश न करो। आगे बढ़ो, अपनी पीड़ा के मर्म में पैठो और वहाँ तुम उस ज्योति, सत्य, शक्ति और आनन्द को पाओगे जो उस पीड़ा के पीछे छिपे हुए हैं। लेकिन उसके लिए तुम्हें दृढ़ होना चाहिये और नीचे फिसलने से इन्कार कर देना चाहिये।

इस तरह तुम्हारे जीवन की सभी छोटी-बड़ी घटनाएँ प्रगति का अवसर बन सकती हैं। अगर तुम उनसे लाभ उठाना जानो तो ब्योरे की एकदम नगण्य चीज़ें भी अन्तःप्रकाश की ओर ले जा सकती हैं। जब कभी तुम किसी ऐसी चीज़ में लगे हो जो तुम्हारे पूरे-पूरे ध्यान की माँग नहीं करती तो अपनी अवलोकन-शक्ति को विकसित करने का लाभ उठाओ। तुम देखोगे कि तुम मज़ेदार खोजें कर पाओगे। मेरे कहने का क्या अभिप्राय है इसे समझाने के लिए मैं तुम्हें दो उदाहरण दूँगी। जीवन की दो छोटी-छोटी घटनाएँ हैं जो अपने-आपमें कुछ भी नहीं हैं, पर फिर भी गहरी और स्थायी छाप छोड़ जाती हैं।

पहला उदाहरण है पैरिस की एक घटना का। तुम्हें इस महानगरी में घूमना है। सब जगह शोर है, दीखने में सब कुछ अस्तव्यस्त है, एक चकराने वाली हलचल है। अचानक तुम एक स्त्री को देखते हो जो तुम्हारे आगे-आगे चल रही है; वह बहुत-सी अन्य औरतों-जैसी ही है, उसके वेश में ऐसी कोई चीज़ नहीं जो ध्यान खींचे, लेकिन उसकी चाल अद्‌भुत है, लचीली, तालबद्ध, नज़ाकतभरी और समस्वर। तुम्हारा ध्यान खिंचता है और तुम विस्मय से भर उठते हो। फिर, इतने लालित्य के साथ चलता हुआ यह शरीर प्राचीन यूनान के वैभवों की और उसकी संस्कृति द्वारा समस्त संसार को दिये गये सुन्दरता के अनुपम पाठ की याद दिलाता है, और यह क्षण तुम्हारे लिए अविस्मरणीय हो उठता है—और यह सब केवल एक ऐसी स्त्री के कारण जो जानती थी कि कैसे चला जाता है!

दूसरा उदाहरण संसार के दूसरे छोर, जापान से है। तुम अभी-अभी इस सुन्दर देश में लम्बे समय तक रहने के लिए आये हो। तुम्हें लगता

है कि यदि तुम यहाँ की भाषा का थोड़ा-बहुत परिचय प्राप्त न कर लो तो काम चलाना कठिन होगा। तुम जापानी भाषा सीखना शुरू करते हो और लोगों को बोलते हुए सुनने का कोई अवसर नहीं चूकते ताकि तुम उससे परिचित हो जाओ, तुम उन्हें ध्यान से सुनते हो, वे क्या कह रहे हैं उसे समझने की कोशिश करते हो। उसी समय तुम ट्राम में, जिसमें तुम आकर बैठे हो, अपनी माँ के साथ एक चार-पाँच वर्ष के बच्चे को देखते हो। बच्चा शुद्ध, स्पष्ट लहजे में बोलना शुरू करता है। तुम सुनते हो और तुम्हें यह अनोखा अनुभव होता है कि जिन बातों को तुम्हें बड़े प्रयास के साथ सीखना पड़ता है उन्हें वह बालक सहज रूप से जानता है, और जहाँ तक जापानी भाषा का सम्बन्ध है, अपनी छोटी उम्र के बावजूद वह तुम्हारा अध्यापक हो सकता है।

इस तरह जीवन आश्चर्यों से भर उठता है और हर पग पर तुम्हें नया पाठ पढ़ाता है। इस दृष्टि से देखा जाये तो जीवन सचमुच जीने-योग्य है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ८१-८४

प्रगति ही यौवन है

सुखी और सार्थक जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व हैं निष्कपटता, विनय, अध्यवसाय और प्रगति के लिए कभी न बुझने वाली प्यास। और सबसे बढ़ कर, तुम्हें प्रगति की असीम सम्भावना के बारे में विश्वास होना चाहिये। प्रगति ही यौवन है। सौ वर्ष की अवस्था में भी तुम युवक हो सकते हो।

*

व्यक्ति को हमेशा केवल बौद्धिक तरीक़े से ही नहीं, मनोवैज्ञानिक तरीक़े से भी सीखते रहना चाहिये, उसे चरित्र की दृष्टि से प्रगति करनी चाहिये, अपने अन्दर गुण उपजाने और दोष ठीक करने चाहियें; हर चीज़ को अपने अज्ञान और अपनी अक्षमता को दूर करने का अवसर बनाना चाहिये; तब जीवन बहुत अधिक मज़ेदार और जीने का कष्ट उठाने-योग्य बन जाता है।

*

अगर चेतना के विकास को जीवन का मुख्य लक्ष्य मान लिया जाये तो बहुत-सी कठिनाइयों का समाधान मिल जायेगा।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १३४-३५

बुढ़ापा

बीते वर्षों का बोझ

केवल वे ही वर्ष जो व्यर्थ में बिताये जाते हैं तुम्हें बूढ़ा बनाते हैं।

व्यर्थ में बिताया गया वह वर्ष होता है जिस वर्ष में कोई प्रगति नहीं की गयी, चेतना में कोई वृद्धि नहीं हुई, पूर्णता की ओर कोई अगला क़दम नहीं उठाया गया।

अपने जीवन को अपने-आपसे कुछ उच्चतर और विशालतर वस्तु को चरितार्थ करने पर एकाग्र करो तो तुम्हें बीतते हुए वर्षों का भार कभी न लगेगा।

*

तुम जितने वर्ष जिये हो उनकी संख्या तुम्हें बूढ़ा नहीं बनाती। तुम बूढ़े तब होते हो जब तुम प्रगति करना बन्द कर देते हो।

जैसे ही तुम्हें लगे कि तुम्हें जो कुछ करना था वह कर चुके, जैसे ही तुम अनुभव करो कि तुम्हें जो कुछ जानना था वह जान चुके, जैसे ही तुम बैठ कर अपने परिश्रम का फल भोगना चाहो और यह सोचो कि तुमने जीवन में काफ़ी काम कर लिया तो तुम एकदम बूढ़े हो जाते हो और तुम्हारा क्षय शुरू हो जाता है।

इसके विपरीत, जब तुम्हें यह विश्वास हो कि जो जानना बाक़ी है उसकी तुलना में तुम जो जानते हो वह कुछ भी नहीं है, जब तुम्हें लगे कि तुमने जो कुछ किया है वह जो कुछ करना बाक़ी है उसका केवल आरम्भ-बिन्दु है, जब तुम भविष्य को उन अनन्त सम्भावनाओं से भरे आकर्षक और चमकते सूर्य के रूप में देखो जिन्हें अभी पाना बाक़ी है, तब तुम युवा हो। जो हो, तुमने धरती पर बहुत-से वर्ष बिताये हैं, युवा और भावी कल की उपलब्धियों से समृद्ध होकर।

और अगर तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा शरीर तुम्हें धोखा दे तो व्यर्थ की उत्तेजना में अपनी शक्ति नष्ट करने से बचो। तुम जो भी करो, शान्त, स्थिर और प्रकृतिस्थ होकर करो। शान्ति और नीरवता में अधिकतम शक्ति है।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १३३-३४

बुढ़ापा और मृत्यु

केवल वे ही वर्ष जो निरर्थक बिताये जाते हैं तुम्हें वृद्ध बनाते हैं।

निरर्थक बिताया हुआ वर्ष वह है जिसमें कोई प्रगति नहीं हुई, चेतना में कोई वृद्धि नहीं हुई, पूर्णता की ओर एक भी क़दम नहीं उठाया गया। अपने जीवन को किसी ऐसी चीज़ की उपलब्धि के प्रति एकाग्र करो जो तुमसे अधिक विस्तृत हो और बीतते वर्ष तुम्हारे लिए कभी भार न बनेंगे।

*

१. मनुष्य अपना शरीर छोड़ने के लिए बाधित क्यों होते हैं?

क्योंकि वे भगवान् की ओर प्रकृति की प्रगति के साथ क़दम मिलाना नहीं जानते।

२. क्या हमें किसी मृत व्यक्ति के शरीर का सम्मान करना चाहिये? अगर हाँ, तो कैसे?

तुम्हें हर चीज़ का, जीवित हो या मृत, सबका सम्मान करना चाहिये और यह जानना चाहिये कि सब कुछ भागवत चेतना में रहता है।

सम्मान का अनुभव हृदय और आन्तरिक मनोवृत्ति में करना चाहिये।

३. क्या मृत शरीर में भी भगवान् होते हैं?

भगवान् **हर जगह** हैं, और मैं फिर से दोहराती हूँ कि भगवान् के लिए कुछ भी जीवित या मृत नहीं है—सब कुछ शाश्वत काल तक रहता है।

४. अन्तरात्मा को प्रसन्न रखने के लिए हमें क्या करना चाहिये जिससे उसका पुनर्जन्म अच्छी अवस्थाओं में, उदाहरण के लिए आध्यात्मिक परिवेश में हो।

दुःख न करो और बिलकुल शान्त और अचञ्चल बने रहो, साथ ही जो चला गया है उसकी स्नेहभरी स्मृति बनाये रखो।

५. क्या अन्तरात्माएँ रोती हैं?

जब कोई चीज़ उन्हें भगवान् से अलग कर देती है।

६. हम किसी को रोने से कैसे रोक सकते हैं?

उसके आँसू रोकने की कोशिश किये बिना उसके साथ सच्चा प्रेम करके।

अन्त्येष्टि में जल्दबाज़ी न की जाये

सामान्यतः, जो चला गया है, जाने के बाद उसके शरीर का कुछ भी हो, उसकी चेतना को कोई कष्ट नहीं पहुँचता। लेकिन स्वयं जड़-भौतिक शरीर में एक चेतना है जिसे आकार या रूप की आत्मा कहते हैं और उसे एकत्रित कोषाणुओं से पूरी तरह बाहर निकलने में समय लगता है; सारे शरीर में सड़ान्ध का शुरू होना उसके चले जाने के बाद का पहला चिह्न है, और जाने से पहले शरीर में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में उसे एक तरह का अनुभव हो सकता है। इसीलिए हमेशा यह ज़्यादा अच्छा होता है कि अन्त्येष्टि में ज़ल्दबाजी न की जाये।

तुम्हारे पिता इसलिए मरे क्योंकि वह उनके देहान्त का समय था। परिस्थितियाँ अवसर भले हों पर निश्चित रूप से, *कारण* नहीं हो सकतीं। कारण भागवत इच्छा में है और उसे कुछ भी नहीं बदल सकता।

इसलिए विलाप मत करो, और अपने अवसाद को भगवान् के चरणों में अर्पित कर दो। वे तुम्हें शान्ति और मुक्ति देंगे।

(किसी ऐसे के नाम जिसके मित्र की मृत्यु हो गयी थी)

अब तुम इस शरीर पर झुक कर उसकी देखभाल न कर सकोगे, अब तुम अपनी क्रियाओं द्वारा अपने गभीर स्नेह को अभिव्यक्त न कर सकोगे और यही कष्टकर है। लेकिन तुम्हें इस अवसाद पर विजय पानी चाहिये। अन्दर देखो, ऊपर देखो, क्योंकि केवल जड़-भौतिक शरीर ही विघटित होगा। उसके अन्दर जिन चीज़ों से तुम प्रेम करते थे वे जड़-भौतिक आवरण के विघटन से किसी भी तरह प्रभावित नहीं होतीं, और अगर गभीर प्रेम की शान्ति में, तुम अपना विचार, अपनी ऊर्जा उस पर एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि वह तुम्हारे निकट रहेगी और उसके साथ तुम्हारा सचेतन सम्पर्क हो सकता है, ऐसा सम्पर्क जो अधिकाधिक ठोस होगा।

'**श्रीमातृवाणी**', खण्ड १५, पृ. १३०, १३३-३६

दैनन्दिनी

जनवरी

१. भागवत कृपा मौजूद रहती है, अपने द्वार खोल कर उसका स्वागत करो।
२. सच्ची विजयें अविचल और आग्रही शान्ति से ही पायी जाती हैं।
३. अपने ऊपर संयम रखने से बड़ी विजय और कोई नहीं है।
४. हम स्थिर मन और शान्त हृदय के साथ ख़ुशी से काम करें।
५. भगवान् की सहायता हो तो कुछ भी असम्भव नहीं है।
६. स्थिर रहो, स्थिरता में सच्ची-सहज अभीप्सा उभरेगी।
७. सभी कठिनाइयाँ श्रद्धा की सहनशीलता परखने के लिए होती हैं।
८. ज़रूरी चीज़ है—आन्तरिक परिवर्तन।
९. हम अपने-आप प्रगति करें, औरों से प्रगति करवाने का सबसे अच्छा उपाय यही है।
१०. सच्ची शक्ति अविचल शान्ति में ही मिल सकती है।
११. औरों की भूलों पर नाराज़ होने से पहले अपनी भूलों को याद कर लो।
१२. अपनी भूलों को पहचानने से बड़ा और कोई साहस नहीं है।
१३. पीछे मत देखो, हमेशा सामने देखो। उसे देखो जो तुम करना चाहते हो, तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।
१४. कार्य में पूर्णता ही लक्ष्य होना चाहिये, लेकिन यह बड़े धीरज के साथ प्रयास करने से प्राप्त होती है।
१५. आओ, हम प्रत्येक कार्य ठीक-ठीक पूजा के रूप में करें।
१६. भगवान् की ओर मुड़ो, तुम्हारे सभी दुःख ग़ायब हो जायेंगे।
१७. हे मेरे प्रभो! मुझे पूरी तरह अपना बना ले।
१८. प्रभो, वर दे कि एक बार की गयी और पहचानी गयी मूर्खता फिर न होने पाये।
१९. जो भी करो, प्रभु को हमेशा याद रखो।
२०. हृदय की नीरवता में अभीप्सा की निष्कम्प ज्वाला जलती है।

२१. सबसे अच्छा उपचार है कि अपने बारे में, अपने विकारों और अपनी कठिनाइयों के बारे में सोचना बन्द कर दो।

२२. तुम्हारे अन्दर अचूक धीरज और अध्यवसाय होना चाहिये।

२३. दुःख पर विजय पाने का सच्चा उपाय है : ज्ञान, शान्ति और समता।

२४. जीवन में से गुज़रने का एकमात्र मार्ग—प्रेम और मुस्कान।

२५. प्रकाश, अन्तहीन प्रकाश, यहाँ अँधेरे का स्थान नहीं है।

२६. यह कहने की ज़रूरत नहीं कि जो सत्य के लिए अभीप्सा करते हैं उन्हें झूठ बोलने से हमेशा बचना चाहिये।

२७. स्थिर अभीप्सा द्वारा ही तुम सीख सकते हो।

२८. धरती पर जीवन तत्त्वतः प्रगति का क्षेत्र है।

२९. कुछ भी अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। हमेशा सावधान और जाग्रत् रहना चाहिये, तब तुम सुरक्षित रहोगे।

३०. जो अपने हृदय के अन्दर सुनना चाहता है उससे सारी सृष्टि भगवान् की बातें करती है।

३१. सर्वोत्तम सुरक्षा है, भागवत कृपा में अचल श्रद्धा।

आया है ऋतुराज बसन्त

सरसों की क्यारी में,
पलाश की लाली में
अटका हुआ है मन,
आया है ऋतुराज बसन्त।
जो क्षण बीत गये हैं
वे सुखद स्मृतियाँ हैं
जो आने वाले हैं
उनकी दस्तक है बसन्त
आया है ऋतुराज बसन्त।।
अमराइयों से भरी पगडण्डियों पर
कोयल की कूक

सुनने को आतुर हैं मन
आया है ऋतुराज बसन्त।।
टेसू के फूलों में,
गेहूँ की बाली में,
होली के रंगों-सा
खिल-खिल जाता है मन
आया है ऋतुराज बसन्त।।
प्रकृति को आत्मसात् करता हुआ
उदित सूर्य की लाली-सा
गाँवों की मेड़ों पर मँडराता है मन
आया है ऋतुराज बसन्त।।

—'वीणा' से साभार

कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है संकल्प!

१९२० के ओलम्पिक खेलों में १०० मी. दौड़ के विजेता चार्ली पैडॉक बहुत अच्छे वक्ता भी थे। युवकों के आदर्श, वे सबकी आँखों का तारा थे। उनका मूल मन्त्र था—"संकल्प करो और बनो"। एक बार वे विद्यालय के बच्चों के सामने भाषण दे रहे थे। भाषण के अन्त में उन्होंने हॉल में बैठे बच्चों के सामने उँगली घुमाते हुए कहा—"कौन जानता है आज दोपहर इस सभा-भवन में कोई भावी ओलम्पिक चैम्पियन न बैठा हो?" भाषण के बाद सभी बच्चों ने उन्हें घेर लिया, सवालों पर सवाल उछलने लगे। उस भीड़ में था बारह साल का एक नीग्रो बालक भी। चार्ली के भाषण से वह इतना अभिभूत हो गया था कि उसके होंठ काँप रहे थे, आँखों से आंसुओं की झड़ी लगी थी। चार्ली ने उसे देखा—सींकिया, एकदम से दुबला-पतला वह बच्चा इतना कमज़ोर लग रहा था कि चार्ली को लगा कि किसी भी पल उसके पैर जवाब दे देंगे। चार्ली उसके पास पहुँचे, उसका हाथ थाम कर बोले—"क्या नाम है तुम्हारा?" बच्चे की हिचकी बँध गयी, चार्ली घुटनों पर बैठ गये, उसे सीने से लगा लिया। बच्चा किसी तरह रुक-रुक कर अपने मन की बात

कह पाया—"मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ, मैं बस आपके जैसा ओलम्पिक चैम्पियन बनना चाहता हूँ।" चार्ली ने उसके दोनों हाथों को अपनी मुट्ठी में ज़ोरों से दबाते हुए कहा—"बच्चे, मैं भी जब उम्र में तुमसे कुछ छोटा था, मैंने यह बात गाँठ बाँध ली थी। बेटे, जी-जान से मेहनत में डूब जाओ। इसी को अपना लक्ष्य बना लो और तुम्हें चैम्पियन बनने से कोई न रोक पायेगा।"

उस नीग्रो बालक की आँखों में हीरे की चमक समा गयी। चार्ली ने मन ही मन सोचा—यह मरियल, दुबला-पतला बच्चा ज़रूर कुछ कर दिखलायेगा। उस दिन चार्ली ने उस नीग्रो बालक के साथ-साथ उन सैकड़ों बच्चों में भी संकल्प और उत्साह का बीज बो दिया जो वहाँ उपस्थित थे। उस नीग्रो बालक ने अपने उस बीज को यत्नपूर्वक सींचा। ग़रीबी के अभिशाप से शापित जीवन की विकट परिस्थितियों से जूझते हुए, उस बच्चे ने दिन-रात, सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास किसी की परवाह नहीं की। न कोई प्रशिक्षक था उसके पास, न रुपये-पैसों का कोई ज़रिया, लेकिन प्रकृति माता ने अपनी गोद उसे सौंप दी थी। वह गली-कूचों, खेत-खलिहानों, पहाड़ी इलाकों में यहाँ-वहाँ, सब जगह, अपनी धुन में दौड़ने का कठिन अभ्यास करता गया तो करता ही चला गया। अपने काम में बहुत ही व्यस्त चार्ली तो इस बच्चे के बारे में क़रीब-क़रीब भूल ही चुके थे लेकिन एक दिन जब वे किसी हाई स्कूल में भाषण देने के लिए पहुँचे तो वहाँ की एक अध्यापिक ने उनसे कहा—"मि.चार्ली, आप सचमुच प्रेरणा के स्रोत हैं। उस दिन आपने जिस नीग्रो बच्चे के हृदय में उत्साह का शंख फूँक दिया था वह जी-जान से मेहनत में जुटा है। दौड़ने के अभ्यास का ऐसा भूत उसके सिर पर सवार है कि आप विश्वास न करेंगे। पड़ोसी होने के नाते मैं उसकी गतिविधियों को देख रही हूँ। इस्पाती संकल्प-शक्ति है उसमें। आपका आशीर्वाद ज़रूर सफल होगा।" भाषण के बाद चार्ली सीधा उस दुबले-पतले बच्चे से मिलने गये। दो महीने पहले का वह सिकुड़ा-सिमटा बालक आज ठोस आत्मविश्वास का छोटा-सा पुतला दीख रहा था। चार्ली को अपने घर आया देख वह बच्चा ख़ुशी से झूम उठा, नाच उठा। चार्ली ने उसकी सारी ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले ली और वह दौड़ के बाक़ायदा प्रशिक्षण में जुट गया।

समय गुज़रता गया। १९३६ में वह कमज़ोर लड़का, जो अब बलिष्ठ, सुन्दर जवान में रूपान्तरित हो गया था, जर्मनी के बर्लिन शहर के ओलम्पिक

स्टेडियम में उतरा।

उसने चार स्वर्ण-पदक अपनी झोली में डाले!!!!—१०० मी. दौड़, २०० मी. दौड़, लम्बी कूद और ४०० मी. रिले दौड़।

उसका नाम है जेसी ओएंस। ओलम्पिक खेलों का जगमगाता सूरज, दुनिया की आँखों का चहेता तारा।

बालक जेसी ओएंस के आसपास की दुनिया का कोई भी व्यक्ति सपने में भी यह सपना न ले सकता था कि कभी यह एकदम से सामान्य, ग़रीब, लाचार-सा मरियल बालक खेल-जगत् की बुलन्दियों को छू लेगा, इतने सुन्दर और सुडौल साँचे में अपना शरीर ढाल लेगा कि उस श्याम-वर्ण सौन्दर्य को देख प्रत्येक दाँतों तले उँगली दबा लेगा। और यह सब हुआ उस क्षण के चमत्कार से जब चार्ली पैडॉक के शब्दों की जादुई छड़ी जेसी पर फिर गयी थी। अपने गुरु चार्ली के प्रति वह चिरकृतज्ञ रहा।

सच है, व्यक्ति का संकल्प उसे कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है।

हमारी कहानी यहाँ ख़तम नहीं होती। बर्लिन ओलम्पिक के बाद जेसी अपने घर क्लीवलैंड, ओहिओ लौटे। वहाँ के वासी उनके लिए पलकें बिछाये बैठे थे। जनता के प्यार और अपनत्व में जेसी सराबोर हो उठे। जहाँ जाते, जब जाते भीड़ की भीड़ उन्हें घेरे रहती। ऐसे ही एक अवसर पर, अब सुनिये जेसी के शब्दों में, "सबके पैरों के बीच से निकलता हुआ, भीड़ को किसी तरह चीर कर वह छोटा नीग्रो बच्चा मेरे पास आ पहुँचा। मेरा हाथ थाम उसने मुझे खींचा। मैं घुटनों के बल बैठ गया, वह बोला—"जेसी, वैसे तो मैं नौ साल का हूँ लेकिन इतना दुबला-पतला हूँ कि मेरे सारे दोस्त 'बोंस' (Bones) कह कर मेरी हँसी उड़ाते हैं, लेकिन मैं सबको दिखा दूँगा कि मैं बलवान् हूँ, क्योंकि मैं भी तुम्हारी तरह ओलम्पिक 'चैम्पियन' बनना चाहता हूँ। मैं इसके लिए **कुछ भी** करने को तैयार हूँ।"

जेसी ने हू-ब-हू अपने-आपको सामने खड़ा पाया। ठीक ये ही शब्द तो उसने चार्ली से कहे थे।

जेसी ने उसे अपने सामने खींच लिया। उसके गले में अपनी दोनों बाँहें डाल कर बोले—"दोस्त! जब मैं उम्र में तुमसे कुछ बड़ा और शरीर से तुम्हारे जैसा था तब मैंने भी अपने सबसे सुन्दर सपने की बात किसी से कही थी। मेरे उन्हीं गुरु ने मुझसे कहा था कि संकल्प करो और जी-जान से जुट

जाओ। तब तुम्हें 'चैम्पियन' बनने से कोई न रोक पायेगा।"

उस बच्चे की आँखें भी जगमगा उठीं। जेसी के गालों पर चुम्बन दे, वह भीड़ को चीरता हुआ अपने घर की ओर यह चिल्लाते हुए भागा—"दादी, दादी, मैं ओलम्पिक 'चैम्पियन' ज़रूर बनूँगा।"

शायद दादी अपनी भौतिक आँखों से न देख पायीं हों लेकिन जेसी ओएंस साक्षी थे लन्दन के वेम्बली स्टेडियम में १९४८ के ओलम्पिक खेलों के जहाँ एक लाख से अधिक दर्शक भी मौजूद थे। १०० मी. की दौड़ का प्रारम्भ, 'ट्रैक' पर छह सबसे तेज़ धावकों की भिड़न्त। गोली दगी। सारे 'स्टेडियम' में क्षण-भर के लिए सूईटपक सन्नाटा छा गया और फिर धावकों को प्रोत्साहित करने के लिए सबका समवेत उच्चघोष उठा। बाहरी, यानी छठी लेन का धावक तीर की तेज़ी से आगे निकल गया, सौ मीटर दौड़ का स्वर्ण पदक मिला उसे, यानी हैरीसन 'बोंस' डिलर्ड को। जेसी की आँखों के सामने कुछ वर्ष पहले का नौ साल का कमज़ोर लड़का उभर आया जिसने "दादी, मैं ओलम्पिक 'चैम्पियन' ज़रूर बनूँगा" की भविष्यवाणी सिद्ध कर दिखलायी थी। दर्शकों को चीरता हुआ 'बोंस' अपने गुरु जेसी को आलींगन में भरने के लिए लालायित हो उठा।

गुरु-शिष्य के उस अपूर्व मिलन को कितनों ने अपने-अपने कैमरों में सहेज लिया। और जेसी के जीवन में सचमुच सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण तब आया जब चार साल बाद १९५२ के ओलम्पिक खेलों में 'बोंस' ने बाधा-दौड़ में स्वयं अपने गुरु जेसी के कीर्तिमान को तोड़ा। उस रोज़ गुरु-शिष्य के अपूर्व मिलन के समय गुरु जेसी अपने शिष्य के कानों में फुसफुसाये—"बेटे, आज का दिन मेरी ज़िन्दगी का सबसे सुखद दिवस साबित हुआ।"

प्रेरणा पाने की इस परम्परा का अन्त धरती पर न कभी हुआ, न होगा। हर एक क्षेत्र में यह प्रेरणा ही बन्द दरवाज़े खोलती है और संकल्प-शक्ति तथा जी-तोड़ मेहनत मनुष्यों को उनके लक्ष्य की ओर सरपट दौड़ाती हैं।

निश्चित रूप से ऐसे अभियानों में कभी-कभी उन सिरजनहार से साक्षात्कार हो ही जाता है, तभी तो किसी विश्व-चैम्पियन एथलीट ने अपने किसी आत्मीय से कहा था—"मैं एथलेटिक्स के 'ट्रैक' पर हमेशा प्रभु को अपने साथ लेकर उतरता हूँ।"

'अग्निशिखा', अक्तूबर १६ से —वन्दना

भगवान् कहते हैं :

"क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ"

संसार में पाप-ताप नहीं है, रोग-शोक भी नहीं, यदि संसार में पाप नामक कुछ वस्तु है तो वह है भय। जो कार्य तुम्हारे अन्दर शक्ति का उद्रेक करता है वही पुण्य है, और जो कार्य तुम्हारे शरीर व मन को दुर्बल बना देता है वही पाप है।

इस समय हमें चाहिये, शक्ति-सञ्चार करना। हम दुर्बल हो गये हैं। हमें चाहियें ऐसे व्यक्ति जिनके शरीर की पेशियाँ लोहे की तरह दृढ़ हों, स्नायु इस्पात से बने हों जो वज्र के उपादान से बना हो। उनमें हो वीर्य, मनुष्यत्व, क्षात्र तेज व ब्रह्म तेज।

—स्वामी विवेकानन्द

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पॉण्डिचेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पॉण्डिचेरी ६०५००१, भारत

सम्पादक : वन्दना

स्वामी : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी-६०५००१

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

शाश्वत यौवन : यह ऐसा उपहार है
जो भगवान् हमें तब देते हैं
जब हम अपने-आपको
उनके साथ एक कर लेते हैं।

श्रीमाँ

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,
जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)
www.aurosocietyrajasthan.org

A Happy Announcement! Our Upcoming Film

SRI AUROBINDO

A CALL TO NEW INDIA

A New Dawn *Series*

A SHORT ANIMATION FILM BASED ON THE 5 DREAMS OF SRI AUROBINDO
BY SRI AUROBINDO SOCIETY

Disciple: *How to bring about the needed cohesion and faith in the country?*

By following Sri Aurobindo's teachings. His Independence Day message on August 15, 1947 needs to be read and reread and its significance explained to millions of his compatriots. India needs the conviction and faith of Sri Aurobindo.

~ The Mother

Participate in creating an inspirational film!
DONATE at www.anewdawn.in

Date of Publication: 1st January 2025
Rs. 30 (Monthly)

अग्निशिखा एवम् पुरोधा, वर्ष २, अंक १६, PONHIN/2023/88119
PY/082/2024-2026
प्रकाशक स्थल: सोसायटी हाउस, ११ सें मार्तें स्ट्रीट, पांडिचेरी ६०५००१